ISSN 2250-2769

इतिहास दिवाकर

मूल्यांकित त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

वर्ष १२ अंक ३ अश्विन मास कलियुगाब्द ५१२१ अक्तूबर २०१९

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय

व्यक्तित्व

राष्ट्रवादी इतिहासकार - प्रो.सतीश मित्तल	चेतराम गर्ग	५

संवीक्षण

औपनिवेशिक काल में भारतीय भू-सर्वेक्षण	लकी शर्मा	११
दशगुरु परम्परा के प्रथम गुरु श्री नानक देव जी के काव्य में समकालीन चित्रण	डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री	१६
जलियांवाला बाग नरसंहार : बलिदानी प्रथा	डॉ. प्रशान्त गौरव	२४
सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के परिप्रेक्ष्य में गांधी	डॉ. जयप्रकाश सिंह	३२
१८५७ की महान क्रान्ति में कसौली का योगदान	डॉ. ओम प्रकाश शर्मा	३६
श्रीमद्भागवत पुराण में काल विवेचन	डॉ. ओम दत्त सरोच	४२
एक सतत् संघर्षशील योद्धा - पण्डित जयकृष्ण शर्मा	भूमिदत्त शर्मा	४७

ध्येय–पथ

गतिविधियां	प्यार चन्द परमार	४८

इतिहास दिवाकर

मूल्यांकित त्रैमासिक अनुसंधान पत्रिका

सम्पादक : डॉ. राकेश कुमार शर्मा — 94181 07730 — rakesh.sharma9131@gmail.com

सह सम्पादक : डॉ. विवेक शर्मा — 98168 23805 — dr.viveksharma.skt@gmail.com

मार्गदर्शक मण्डल

डॉ. शिवाजी सिंह	गोरखपुर, (उ.प्र.)	+91–96288–72796	jns.sbs@gmail.com
श्री विजय मोहन कुमार पुरी	कांगड़ा (हि.प्र.)	+91–98163–20307	vmkpuri@outlook.com
प्रो. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री	कांगड़ा (हि.प्र.)	+91–94181–77778	kuldeepagnihotry@gmail.com
डॉ. ईश्वर शरण विश्वकर्मा	प्रयागराज, (उ.प्र.)	+91–99354–00244	isvishwarkarma@gmail.com
प्रो. कुमार रत्नम	नई दिल्ली	+91–88396–79817	kumarratnam65@gmail.com
डॉ. सुदर्शन गुप्ता	कठुआ, जम्मू	+91–79735–61624	vnclsg@gmail.com
डॉ. रमेश चन्द शर्मा	हमीरपुर (हि.प्र.)	+91–94184–80231	dr.rcsharma7@gmail.com
श्री चेतराम गर्ग	नेरी, हमीरपुर (हि.प्र.)	+91–94184–85415	chetramneri@gmail.com

विषय विशेषज्ञ एवं परीक्षण मण्डल

प्रो. सुगम आनन्द	आगरा (उ.प्र.)	+91–93191–05821	sugam@yahoo.co.in
डॉ. ओम प्रकाश शर्मा	शिमला (हि.प्र.)	+91–94184–80231	sharmaom70@gmail.com
डॉ. भाग चन्द चौहान	कांगड़ा (हि.प्र.)	+91–92191–41813	bcawake@gmail.com
डॉ. धर्म चन्द चौबे	अलवर, राजस्थान	+91–94611–94995	choubeydc.87@gmail.com
डॉ. नीत बिहारी लाल	रामपुर, (उ.प्र.)	+91–98376–56583	neetbehari@gmail.com
डॉ. कंवर चन्द्रदीप	कांगड़ा (हि.प्र.)	+91–95318–04179	kanwar.chanderdeep@gmail.com
डॉ. अंकुश भारद्वाज	शिमला (हि.प्र.)	+91–98760–35002	ankushbhardwaj333@gmail.com
डॉ. प्रियतोश शर्मा	चण्डीगढ़	+91–95015–36200	priyatosh.32@gmail.com

सम्पादन सहयोग

डॉ. ओम दत्त सरोच	ऊना, (हि.प्र.)	+91–94180–42431	omduttsaroch29@gmail.com
डॉ. शिव भारद्वाज	सोलन (हि.प्र.)	+91–94188–28866	shivmrkv29@gmail.com
डॉ. कृष्ण मोहन पाण्डेय	ऊना (हि.प्र.)	+91–97639–77002	apkmpandey@gmail.com
डॉ. मनोज कुमार	हिसार, हरियाणा	+91–94160–85062	rangra.manoj@rediffmail.com
डॉ. जयप्रकाश सिंह	कांगड़ा (हि.प्र.)	+91–98826–01975	jpsh.pol@gmail.com

व्यवस्थापक

प्यार चन्द परमार

+91–94180–59166

टंकण एवं सज्जा

रवि ठाकुर

सम्पादकीय कार्यालय

ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान, गांव व डाकघर - नेरी, जिला - हमीरपुर,

पिन - १७७००१ (हि०प्र०) दूरभाष : ०६४१८४-८५४१५

E-mail : itihasdivakar@yahoo.com **Website :** www.ssneri.com

मूल्य : प्रति अंक - १५.०० रुपये, वार्षिक - ६०.०० रुपये

सम्पादकीय

राष्ट्राय स्वाहा, इदं न मम

सुविख्यात इतिहासकार प्रो. सतीश मित्तल जी का आकस्मिक परलोक गमन राष्ट्रवादी चिन्तकों तथा इतिहासविज्ञों के लिए एक अपूर्णीय क्षति है। मित्तल जी बाल्यकाल से ही राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़ गए थे, जिसका प्रभाव इनके लेखन एवं अध्ययन में प्रत्यक्ष परिलक्षित होता है। वे अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना समिति के संस्थापक सदस्य तथा राष्ट्रीय स्तर के विभिन्न दायित्वों का निर्वहण करते हुए सन् २०१२ से अब तक राष्ट्रीय अध्यक्ष रहे। ब्रिटिश साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा गढ़े गए मिथ्या सिद्धान्तों का प्रो. मित्तल ने सत्य साक्ष्यों के आधार पर अपनी सशक्त लेखनी से खण्डन किया। उन तथाकथित इतिहासकारों पर भी उन्होंने प्रहार किया जो तथाकथित इतिहास के अध्येता के पद पर होने पर भी यूरोपीय विचारों का ही पोषण कर रहे थे। इस अंक में शोध संस्थान के निदेशक चेतराम गर्ग जी के साथ उनकी भेंट वार्ता व संस्मरण को भी सम्मिलित किया जा रहा है। हम यह अंक ऐसे मनीषी के चरणों में सादर समर्पित करते हैं।

केन्द्र सरकार का कश्मीर के मुद्दे पर लिया गया ऐतिहासिक फैसला तथा तीन तलाक का साहसिक निर्णय इस तिमाही के राजनीतिक परिदृश्य के केन्द्र में रहे। यह प्रयास केन्द्र में एक मजबूत सरकार होने के परिणामों को परिलक्षित करता है। चन्द्रयान–२ अभियान भारत की अन्तरिक्ष यात्रा का एक बड़ा पड़ाव है। वैज्ञानिकों का साहस और मेहनत उस दिशा में किया जाने वाला बड़ा अभियान राष्ट्र की उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है। गत माह शोध संस्थान तथा हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला के संयुक्त तत्वावधान में 'जलियांवाला बाग नरसंहार' विषय पर दो दिवसीय परिसंवाद का आयोजन हुआ।

पिछले दिनों हमने पूर्व विदेश मन्त्री एवं विदुषी नेत्री श्रीमती सुषमा स्वराज तथा कानूनविद्, पूर्व केन्द्रीय वित्त मन्त्री अरूण जेटली जैसे व्यक्तित्वों को खो दिया जो अवश्य ही मानव के सर्वश्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न थे। शोध संस्थान के संस्थापक सदस्य पण्डित जयकृष्ण शर्मा जी लम्बी बिमारी के बाद १० अगस्त २०१९ को स्वर्ग सिधार गए। शोध संस्थान दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता है।

प्रस्तुत अंक गुरु नानक देव जी के ५५०वें प्रकाश उत्सव पर्व, गांधी जी की १५०वीं जयन्ती, जलियांवाला बाग नरसंहार आदि विषयों के पक्षों को केन्द्र बिन्दु में रखकर पाठकों को समर्पित किया जा रहा है। सुझाव व प्रोत्साहन सम्बन्धी संपर्क अपेक्षित है।

दीपावली की मंगल कामनाओं के साथ।

विनीत,

डॉ. राकेश कुमार शर्मा

प्रो. सतीश मित्तल की इतिहास लेखन यात्रा

कलियुगाब्द ५०६४-५१२१, विक्रमी संवत् २०१९-२०७६ (सन् १९६२-२०१९)

- पण्डित जवाहर लाल नेहरू का चिन्तन एवं इतिहास दृष्टि (2018)
- भटकाव के 67 वर्ष (2016)
- भारतीय नारी- अतीत से वर्तमान तक (2015)
- भारत का संक्षिप्त इतिहास (2014)
- राष्ट्रीय चैतन्य के प्रकाश में भारत का स्वाधीनता संघर्ष (2012)
- स्वाामी विवेकानन्द की इतिहास-दृष्टि (2012)
- कांग्रेस : अंग्रेज-भक्ति से राजसत्ता तक (2011)
- ब्रिटिश इतिहासकार तथा भारत (2010)
- 1857 : वनवासी नेतृत्व (हिन्दी और अंग्रेजी में) (क्रमशः 2009 एवं 2010)
- अविस्मरणीय विजयनगर - साम्राज्य एवं महाराजा कृष्णदेवराय (2009)
- क्या पंजाब अंग्रेजों के प्रति वफादार रहा (2007)
- मुस्लिम शासक तथा भारतीय जनसमाज (2007)
- 1857 का स्वातन्त्र्य समर : एक पुनरावलोकन' (हिन्दी, कन्नड़ एवं गुजराती) (क्रमशः 2006 एवं 2007)
- आधुनिक भारत इतिहास की प्रमुख भ्रांतियां (2006)
- साम्यवाद का सच (2006)
- विश्व में साम्राज्यवादी साम्यवाद का उत्थान तथा पतन (2006)
- भारत का सामाजिक-आर्थिक इतिहास (2005)
- Modern India (हिन्दी में भी)(2003)
- भारत के राष्ट्र-चिन्तकों का वैचारिक दर्शन तथा इतिहास दृष्टि (2001)
- India Distorted : A Study of British Historians on India (3 Vols.) (1996-1998)
- Selected Annotated Bibliography on Freedom Movement in India :
- Punjab & Haryana (1992)
- Haryana : A Historical Perspective (1986)
- Sources on National Movement : protests, Disturbances and defiance (January 1919 to September 1920), (1985)
- मराठा शकित का उदय : महान् संगठक शिवाजी (1977)
- Freedom Movement in Punjab (1905-1929) (1977)
- आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास (1976)
- देशरत्न लाला लाजपत राय (1962)

व्यक्तित्त्व

राष्ट्रवादी इतिहासकार - प्रो. सतीश मित्तल

चेतराम गर्ग

प्रो. सतीश मित्तल का जन्म उत्तर प्रदेश के मुजफरनगर जिलान्तर्गत कांघला कस्बे में कलियुगाब्द ५०३९, विक्रमी संवत् १९९४ (०१ जनवरी, १९३८) को हुआ था। उन्होंने आगरा विश्वविद्यालय से इतिहास विषय में, पंजाब विश्वविद्यालय से राजनीतिक शास्त्र में स्नातकोत्तर तथा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय हरियाणा से ''पंजाब में स्वतन्त्रता आन्दोलन (१९०५-१९२९)'' (Freedom movement in Punjab 1905-1929) विषय पर शोध प्रबन्ध लिखकर पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। कुछ वर्षों तक आर.के.एस.डी. महाविद्यालय कैथल में अध्यापन कार्य किया, तत्पश्चात् कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग में प्रोफेसर के पद पर साढ़े तीन दशकों तक राष्ट्र सेवा में संलग्न रहे। १२ सितम्बर, २०१९ गोरखपुर मन्दिर में ब्रह्मलीन महन्त दिग्विजयनाथ की ११५ वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में आयोजित समारोह में वे मुख्यवक्ता रहे। कार्यक्रम के उपरान्त अकस्मात् सायं ५:३० बजे उनकी हृदयगति रूक जाने से गोरखपुर में ही उन्होंने अन्तिम सांस ली। राष्ट्रवादी इतिहास लेखन के क्षेत्र में यह एक अपूर्णीय क्षति है।

प्रो. सतीश मित्तल मानवीय संवेदना, विश्वास और इतिहास की प्रतिमूर्ति थे। मैंने सर्वप्रथम उनके दर्शन अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना की साधारण सभा की वार्षिक बैठक कलियुगाब्द ५११३, विक्रमी संवत् २०६७, आषाढ़ कृष्ण ९-१० (२५-२६ जून, २०११) में गुजरात के उत्तरी जिला बंसवाड़ा के जिला केन्द्र पालनपुर के जी.डी. मोदी संकुल में किए थे। प्रो. मित्तल उस समय अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के राष्ट्रीय कार्यकारी अध्यक्ष थे। सन् २०१२ में मैसूर के महाधिवेशन में उनके पास राष्ट्रीय अध्यक्ष का दायित्त्व आ गया। इतिहास के क्षेत्र में विशेषकर उन्होंने भारत में ब्रिटिश साम्राज्यकाल में गढ़े गए मिथ्या सिद्धान्तों का पर्दाफाश किया तथा भारतीय इतिहास के सत्य साक्ष्यों को समाज के समक्ष लाया।

प्रो. मित्तल बड़े हंसमुख, कर्मठ व सरल स्वभाव के व्यक्ति थे। बाल्यकाल में ही वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के स्वयंसेवक बन गए थे। कार्यकर्ताओं की समस्याओं का समाधान सरल ढंग से करना उनका विशिट गुण था। सन् २०११ से अब तक सन् २०१९ तक प्रतिवर्ष साधारण सभा की बैठक तथा अन्य कार्यक्रमों में उनसे मिलना होता रहा है। साधारण सभा की बैठक में मैं नेरी शोध संस्थान में चल रहे कार्यों का प्रतिवेदन रखता रहा हूं। चाय अथवा भोजन के समय मुझे उनके साथ बैठने का समय मिलता रहा है। नेरी में चल रहे कार्यों की प्रशंसा करना व प्रोत्साहन देना उनका प्रथम

कार्य रहता था तथा दूसरा कार्य स्वर्गीय ठाकुर रामसिंह जी के साथ किए गए कार्य की चर्चा होती थी। वे कहते थे – ''ठाकुर जी हमारे आदर्श थे। उनकी कर्मठता के आगे हम सब नतमस्तक थे। वे ऋषि पुरुष थे। हम उनकी बात का सदा सम्मान करते थे। उनके मागदर्शन में सांगठनिक भाव सर्वोपरि होता था।''

वर्ष २०१५-१६ माननीय ठाकुर रामसिंह जी का शताब्दी वर्ष था। शोध संस्थान नेरी ने उत्तर भारत तथा असम में जहां उन्होंने प्रान्त प्रचारक के रूप में २१ वर्ष कार्य किया था, वहां भी कार्यक्रम आयोजित करने की योजना बनाई। हरियाणा प्रान्त के कैथल में कलियुगाब्द ५११८, विक्रमी संवत् २०७३ (१७ जून, २०१६) तथा पंजाब प्रान्त के अमृतसर कलियुगाब्द ५११७, विक्रमी संवत् २०७२, फाल्गुन कृष्ण ५ (२८ फरवरी २०१६) को श्रीराम आश्रम स्कूल सभागार के कार्यक्रम में मुख्यवक्ता के रूप में मार्गदर्शन माननीय मित्तल जी का प्राप्त हुआ। शताब्दी वर्ष पर ही शोध संस्थान नेरी में राष्ट्रीय परिसंवाद **इतिहास लेखन में लोकगाथाओं का योगदान** विषय पर कलियुगाब्द ५११७, विक्रमी संवत् २०७२ (२ अक्तूबर, २०१५) में उन्होंने उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता की। अपने उद्बोधन में उन्होंने कहा – ''इतिहास अतीत की स्मृतियां हैं, इतिहास जीवन का ब्यौरा है तथा इतिहास एक दृष्टि है।'' उन्होंने कहा की आज के तथाकथित सभ्य चिन्तकों ने इतिहास को यूज किया फिर कन्फयूज किया। जब मैं अरस्तु को पढ़ता हूं तो उसमें इतिहास को नहीं पाता हूं पर जब मैं भारत की लोकगाथाओं को पढ़ता हूं तो वे इतिहास की महत्त्वपूर्ण कड़ियों को जोड़ती है। नेरी में जब वे कार्यक्रम की समाप्ति पर सभागार से नीचे उतरे तो वे सीधे पुस्तकालय में गए। मैं उनके साथ रहा। पूरा पुस्तकालय उन्होंने देखा, पुस्तकें भी देखी। उन्होंने कहा – ''चेतराम जी! आपके पास दुर्लभ पुस्तकालय है। पुस्तकों का चयन बहुत अच्छा है। धीरे-धीरे यहां पुस्तकें बढ़ती जाएगी।''

कलियुगाब्द ५११७ (२ अक्तूबर, २०१५) को नेरी शोध संस्थान में आयोजित राष्ट्रीय परिसंवाद के उद्घाटन सत्र में मित्तल जी सम्बोधित करते हुए (बाएं से तीसरे स्थान पर)

अमृतसर के कार्यक्रम की योजना बहुत अच्छी बनी हुई थी। वहां ठाकुर जी के शताब्दी वर्ष

समारोह की योजना भी नगर के अनुसार बनी हुई थी। माननीय मित्तल जी का मार्गदर्शन सभी को प्राप्त हुआ। उन्होंने कहा – ''यह उस महान कर्मयोगी के प्रति श्रद्धा व समर्पण का भाव है जिन्होंने हम सब को तराशा है। राष्ट्र सेवा का मार्ग दिखाया है। ठाकुर रामसिंह एक खुली किताब थे। जिसमें न कोई कौमा था, न कोई सेमिकोलन, न ही कोई फुलस्टाप। जीवन का एक ही ध्येय चरेवैति-चरेवैति. ... चलते जाना चलते जाना।'' ये शब्द जो उन्होंने ठाकुर रामसिंह जी के लिए कहे थे, ठीक मित्तल जी पर चरितार्थ होते हैं। अमृतसर में मित्तल जी ट्रेन द्वारा आए थे और मुझे उन्हें रेलवे स्टेशन से लाने का सौभाग्य मिला था। रेलवे स्टेशन से संघ कार्यालय बहुत दूर नहीं है। मैंने स्टेशन पर उनकी प्रतीक्षा की। ट्रेन आने के बाद वे गाड़ी से उतरे और हम दोनों संघ कार्यालय की ओर चल दिए। आगे यात्रा टिकट परीक्षक खड़ा था। मित्तल जी ने अपना टिकट दिखाया। मुझसे पूछा कि तुम अपना स्टेशन टिकट दिखाओ। मैंने कहा कि मैंने तो टिकट नहीं लिया है, मुझे इसका पता नहीं था। हिमाचल में ट्रेन की इतनी आवाजाही भी नहीं है। पहले कभी ऐसा मौका भी नहीं मिला था। मैंने यात्रा टिकट परीक्षक को विनम्र भाव से कहा – जो जुर्माना बनता है ले लो। गलती तो मेरी ही है। खैर हमने थोड़ा सा जो बनता था जुर्माना दे दिया। वहां से निकलने के बाद मित्तल जी ने कहा – आप हिमाचल के हो। आपने सच कह दिया। कोई और होता तो कोई न कोई बहाना बनाकर अपने आपको बचाने की कोशिश करता। मुझे उनकी यह बात अच्छी लगी। इस से मेरा ही नहीं पूरे हिमाचल का सम्मान हुआ जब उन्होंने हिमाचल प्रदेश को सम्बोधित किया।

कैथल के कार्यक्रम में रहने के बाद हम दोनों रात्रि को कुरुक्षेत्र विद्याभारती के कार्यालय में आ गए। यहां हम दोनों के पास पर्याप्त समय था। हम दोनों को ही दूसरे दिन अपने-अपने स्थान के लिए प्रस्थान करना था। इसलिए चर्चा के लिए खुला समय था। बातचीत का सिलसिला सरस्वती नदी की खोज के प्रारम्भिक दिनों से प्रारम्भ हुआ। उस समय मित्तल जी कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में इतिहास विभाग में पढ़ा रहे थे। सरस्वती नदी की खोज का सिलसिला बहुत लम्बा था। इसकी खोज कार्य में मुख्य रूप से माननीय मोरोपन्त पिंगले जी, माननीय ठाकुर रामसिंह जी, डॉ. विष्णुधर वाक्कणकर, श्री विजय मोहन कुमार पुरी तथा प्रो. सतीश मित्तल जी लगे हुए थे। इन्होंने इस कार्य को आगे बढ़ाया। इसके अतिरिक्त भी बहुत विद्वान इस कार्य में लगे हुए थे। मित्तल जी ने बताया कि जब हम विश्वविद्यालय में अपने विभाग में सरस्वती नदी की खोज के बारे में चर्चा करते थे तो सामान्यतः यह एक अविश्वसनीय सी बात लगती थी। कभी-कभी तो कुछ प्राध्यापक व्यंग भी कर देते थे कि मित्तल जी किस काम में लगे हो? यह कोई होने वाला काम नहीं है। इसमें व्यर्थ में समय न गंवाओं। सरस्वती नदी का कोई अस्तित्व नहीं है। ऐसी सारी बातें सुननी पड़ती थी। पर मित्तल जी और पूरी टीम काम में लगी रही। इन सब लोगों ने सरस्वती के मार्ग पर पैदल यात्रा की है। वर्षों की मेहनत ने जब रंग लाया तो पूरे विश्व को आश्चर्यचकित कर दिया। मित्तल जी ने एक बैठक में उस प्रथम पत्रक को भी

दिखाया था जो आज से २५ वर्ष पूर्व प्रकाशित किया गया था। उन्होंने सरस्वती नदी से सम्बन्धित महात्मा जी की घटना भी सुनाई जोकि उनके साथ घटी थी। एक दिन एक महात्मा उनके पास कुरुक्षेत्र आया। उसने कहा – मैंने सब तीर्थों में स्नान कर लिया है। मैं सरस्वती के पानी से स्नान करना चाहता हूं। बस सरस्वती के पानी से स्नान करने से मेरी तृप्ति पूर्ण हो जाएगी। मित्तल जी सोच में पड़ गए कि इस महात्मा को सरस्वती नदी में स्नान कैसे करवाऊं? क्योंकि सरस्वती नदी का मार्ग तो ढूंढ लिया गया है पर उसमें पानी तो अभी कहीं नहीं है। ऐसे में क्या किया जाए? कोई रास्ता न था। महात्मा को सरस्वती नदी का वह मार्ग बताया जाए जहां से वह पवित्र नदी बहती थी। वे महात्मा को सरस्वती नदी के मार्ग पर ले गए। आसमान पूरा साफ था। जब वह सरस्वती के उस मार्ग पर चल रहे थे तब अचानक आसमान में एक बादल आया और वर्षा होने लगी। सरस्वती नदी के मार्ग के गढ्ढों में पानी भर गया। महात्मा ने अपने वस्त्र उतारे और मिट्टी से भरे उस पानी में स्नान करने की अपनी इच्छा को पूरा किया। क्या चमत्कार था, क्या इच्छा थी और क्या संयोग था। आज दुनिया सरस्वती के अस्तित्व को मान रही है। उस पर करोड़ों रुपया खर्च हो रहा है। बड़ा साहित्य प्रकाशित हो गया है।

मित्तल जी की दिनचर्या और जीवन के दूसरे पहलुओं पर भी विचार किया जाना आवश्यक है अन्यथा हम साधक की साधना को समझ नहीं पाएंगे। साधना में वर्षों लगते हैं उसमें मन, वचन, कर्म और स्वभाव नितान्त आवश्यक होता है। मुझे उनके सरकारी सेवा से निवृत्ति के बाद की दिनचर्या की जानकारी है। वे प्रातः ४.०० बजे उठ जाते, अपने नित्य कर्म से निवृत्ति के उपरान्त अध्ययन और लेखन कार्य में लग जाते। दिन के १२:०० बजे तक यही क्रम रहता। इसी बीच अल्पाहार आदि भी हो जाता था। दोपहर भोजन के बाद ही वे किसी और कार्य की ओर ध्यान देते थे। राष्ट्रीय संगठन सचिव श्रीमान् डॉ. बालमुकुन्द जी का कहना है कि हर दो महीने बाद उनकी कोई न कोई पुस्तक प्रकाशन के लिए तैयार रहती थी। अब तक उनकी ३० से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो गई है। उनके संदर्भ ग्रन्थों की सूचि इतनी लम्बी होती है कि कोई भी हैरान हुए बगैर नहीं रह सकता है। इतने विस्तृत अध्ययन के सदंर्भों की सूची देखकर ही व्यक्ति सोचता है कि इतनी अधिक पुस्तकों को इन्होंने कब देखा और पढ़ा होगा। पर उनसे जब चाहें तब कहीं से भी बात कर लें, वे विषय को पूरा करते थे, जिससे शोधार्थी को नई ऊर्जा और हिम्मत मिलती थी। जब प्रो. मित्तल इस आयु में इतना काम कर लेते हैं तो हमें भी उनसे प्रेरणा लेनी चाहिए।

मैं गुवाहाटी के अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के राष्ट्रीय अधिवेशन कलियुगाब्द ५१२०, विक्रमी संवत् २०७५ (२३,२४,२५ दिसम्बर, २०१८) में गया था। उसके बाद राष्ट्रीय कार्यकारिणी की दो बैठकें और हुईं। एक कुम्भ के दौरान २४ फरवरी, २०१९ को प्रयागराज में और दूसरी कलियुगाब्द ५१२१, विक्रमी संवत् २०७६ (३० जुलाई, २०१९) माह में आई.सी.एच.आर.

परिसर दिल्ली में। मुझे इन दोनों बैठकों में मित्तल जी द्वारा एक विषय पर अधिक जोर देने व कुछ अलग सा सोचने पर मजबूर किया। ''हम अपनी विदेशी मानसिकता की सोच से बाहर नहीं आ रहे है। यह मेरे लिए चिन्ता का विषय है। इसका उन्होंने थोड़ा खुलासा भी किया। विदेशी मानसिकता से बाहर आने का मतलब है कि भारतीय विचार दर्शन की अभिव्यक्ति। यह अभिव्यक्ति हमारे कार्य और व्यवहार से दिखाई देती है। भारतीय कालक्रम को समझना और उसका व्यवहार करना। इतिहास के उन विषयों पर ध्यान देना जिससे समाज को जोड़ने और अपने महापुरुषों के दिखाए गए मार्ग का अनुसरण हो सके। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष हमारी इतिहास की परिभाषा है। हम इस बात को अच्छी तरह से समझ लें। उन्होंने एक और चिन्ता व्यक्त की कि हम पिछले ५० वर्षों से इतिहास संकलन योजना का काम कर रहे हैं। अभी जितने अपेक्षित परिणाम आने चाहिए उस पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

मैं उनकी भारतीय सन्तवृत्ति पर अपनी बात को समेटना चाहता हूं। कुरुक्षेत्र में ही एक चर्चा के दौरान उन्होंने मुझसे कहा था कि – ''चेतराम जी, केन्द्र में वर्तमान सरकार आने के बाद मुझसे आई.सी.एच.आर तथा अन्य संस्थानों में अध्यक्ष अथवा किसी भी संस्था का मेम्बर बनने का बड़ा आग्रह था। मैंने किसी पद को भी लेने से मना दिया था। मुझे किसी चीज की इच्छा ही नहीं है। मेरी सारी जरूरतें पूरी हुई है। मैं तो बस संगठन ने जो कहा – वह करता हूं। जब मेरे आज तक के सभी कार्य ईश्वर ने निर्विघ्न पूरे किए तो आज मैं किसी लाभ की ओर क्यों देखूं? संगठन जो बोलता है वह मैं करता हूं। मेरे लिए किसी साधन सुविधा की जरूरत नहीं है। मेरे बच्चे मेरे कार्य में सहायक है इसलिए मुझे इस संगठन कार्य से विमुख होकर कुछ अधिक नहीं करना है। हमारे शोध संस्थान नेरी के पूर्व वैचारिक पक्ष के निदेशक डॉ. विद्याचन्द ठाकुर मित्तल जी का बड़ा सम्मान करते थे। इतिहास संकलन योजना में मेरा सम्बन्ध डॉ. विद्याचन्द जी से ही आया था। इतिहास संकलन योजना में डॉ. विद्याचन्द ठाकुर जी लम्बे समय से काम रहे थे। इसलिए प्रो. मित्तल जी के साथ उनके गहरे और पुराने सम्बन्ध थे। एक बार शिमला में उपायुक्त कार्यालय के बचत भवन में इतिहास संकलन योजना की शिमला ईकाई का कार्यक्रम रखा गया था। उसमें मुख्य वक्ता प्रो. मित्तल जी थे। विषय भी सामने बेनर पर लिखा गया था। माननीय ठाकुर रामसिंह जी भी उसमें पधारे हुए थे। उन्होंने बेनर पर लिखे विषय को पढ़ा और कहा ''यह क्या है? यह विषय ठीक नहीं है।'' प्रो. मित्तल जी तो अपना विषय तैयार करके लाए हुए थे पर ठाकुर जी को कैसे बताया जाए। ठाकुर जी को ऊंचा सुनाई देता था। पर खैर जिस विषय पर बोलने के लिए कहा – प्रो. मित्तल जी ने उसके लिए दस मिनट का समय मांगा। दस मिनट बाद मित्तल जी ने माननीय ठाकुर रामसिंह जी द्वारा सुझाए विषय पर जिस ढंग से विषय रखा उस पर ठाकुर जी ने प्रो. मित्तल जी की पीठ थपथपाई। सबने बड़ी मस्ती से जलपान किया और बाद में अच्छी बैठक हुई। प्रो. मित्तल जी ने जब यह घटना मुझे सुनाई थी तो उन्होंने बताया कि ठाकुर

जी इस तरह से कार्यकर्ता की परीक्षा भी लिया करते थे।

स्वतन्त्रता के बाद अब तक के इतिहास पर विपिन चन्द्र की पुस्तक ''India Since Independence'' की चर्चा मैंने प्रो. मित्तल से की। वे मुस्कराए और फिर उन्होंने मुझे ६७ वर्ष के इतिहास पर अपनी एक पुस्तक दी। मैंने उस पुस्तक को देखा नहीं था। उसे पढ़कर बड़ा आनन्द आया। मैंने दोनों पुस्तकों का तुलनात्मक अध्ययन किया। उस पुस्तक में प्रो. मित्तल जिस बात की चिन्ता व्यक्त कर रहे थे उसके आश्य यही था कि हमारे राष्ट्रवादी चिन्तक जिस विषय को समझ रहे हैं उस पर काम को करने की आवश्यकता है।

गुवाहाटी अधिवेशन में शोध पत्र पढ़ने के स्थान पर पैनल डिस्कशन पर अधिक ध्यान दिया गया। आज इसका कुछ दौर भी चल रहा है। मैंने प्रो. मित्तल जी से इस पर चर्चा की। उन्होंने कहा – आजकल शोध पत्र अच्छे नहीं आ रहे है। जिस पर चर्चा करनी मुश्किल हो जाती है। इसलिए यह विकल्प अच्छा है। पर यदि नेरी में होने जा रहे परिसंवाद में अच्छे शोध पत्रों के आने की संभावनाएं है और जैसा क्रम आपने वहां स्थापित कर दिया है, उस हिसाब से शोध पत्रों का अच्छी प्रकार से चयन कर आप शोध पत्रों को ही पढ़ाओ। चर्चा तो शोध पत्रों से ही होगी। नये शोधार्थियों को उभारने का मौका भी वहीं से मिलेगा। हमने १५-१६ फरवरी, २०१९ में हुए परिसंवाद में अपना पुराना क्रम रखा। अच्छे शोधपत्र पढ़े गए। परिणाम भी अच्छे आए।

माननीय ठाकुर रामसिंह जी का पत्र व्यवहार प. पू. श्री गुरूजी और सरकार्यवाह माननीय एकनाथ रानाड़े जी के साथ रहा है। वे सारे पत्र हमारे पास सुरक्षित है। उसका टंकण कार्य भी हो गया। मैं उन्हें दिखाने के लिए मित्तल जी के पास भी ले गया था पर संगणक की गलती से वे तिथि क्रम में न थे जो मैं उन्हें दिखाता। उन्होंने कहा कि इन पत्रों को पुस्तक रूप में प्रकाशित कर दिल्ली में इसका लोकार्पण हो। ठाकुर जी को आए पत्र प्रकाशित हो जाने चाहिए। हम उनके दिखाए मार्ग और कर्म का अनुसरण कर पाएं यही उनके लिए हमारी श्रद्धांजलि होगी। शोध संस्थान नेरी स्वर्गीय मित्तल जी को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है। एक मनीषी अपना शरीर शान्त कर हजारों दीप जला गया।

निदेशक एवं समन्वयक
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध
संस्थान नेरी, हमीरपुर (हि.प्र.)

संवीक्षण

औपनिवेशिक काल में भारतीय भू-सर्वेक्षण

लकी शर्मा

सामान्यतः इतिहासकार इस बात पर एकमत हैं कि भारत में उपनिवेशवाद का प्रस्फुटन प्लासी के युद्ध के पश्चात् हुआ। यूरोपीय कम्पनियां पूर्व के प्राकृतिक संसाधनों की तरफ प्रारम्भ से ही आकर्षित रही व तदनुरूप क्षेत्रों का विस्तार किया। विभिन्न प्रान्तीय सत्ता व खोखले पड़े मुगल साम्राज्य को क्षत-विक्षत करने के बाद यूरोप की विभिन्न ताकतों में से ब्रिटिश सबसे मजबूत बनकर उभरे। श्रीरंगपट्नम के विजेता वेलेजली ने सर्वप्रथम भूमि के सर्वेक्षण की आवश्यकता को महसूस किया जिससे कि कर वसूलने, यात्रा करने व क्षेत्र के विस्तार करने में आसानी हो सकती थी। हालांकि इसके पहले जेम्स रेनेल ने भी सर्वेक्षण व मानचित्र बनाने के प्रयास किए थे, परन्तु वे प्रयास –

१. बंगाल क्षेत्र तक ही सीमित रहे।

२. थल मार्गों की अपेक्षा समुद्री मार्गों की ओर ज्यादा केन्द्रित थे।

३. इसमें त्रुटियों की प्रायिकता बहुत अधिक थी।

ब्रिटिश शक्ति इस बात से अवगत थी कि एक सुदृढ़ व स्थायी शासन प्रणाली की स्थापना एवं नियमित तथा संतुलित कर उगाही के लिए भी भू-मापन एक अनिवार्य प्रक्रिया है। इस प्रयास में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा मुख्यतः तीन प्रकार के भू-सर्वेक्षण प्रारम्भ किए गए –

१. राजस्व सर्वेक्षण (Revenue Survey)

२. स्थलाकृतिक सर्वेक्षण (Topographical Survey)

३. त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण (Trigonometrical Survey)

यह तीनों ही प्रकार के सर्वेक्षण विभिन्न उद्देश्यों के साथ लगभग एक ही समय में (१७९९-१८०२ ई.) में प्रारम्भ हुए हालांकि इसके अतिरिक्त भी कई प्रकार के सर्वेक्षण आरम्भ हुए जैसे- समुद्री, सैन्य व मार्ग सर्वेक्षण इत्यादि। प्रस्तुत लेख में हम त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण की विवेचना करेंगे।

त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण (Trigonometrical Survey)

इसमें Theodolite उपकरण के माध्यम से व त्रिकोणमितीय समरूपता के सिद्धान्तों की सहायता से विभिन्न क्षेत्रों की ऊंचाई, दूरी इत्यादि का मापन किया जाता है जिसमें त्रुटियों की संभावना बहुत कम होती है।

ब्रिटिश गणितज्ञ **विलिमय लैम्बटन** जोकि आंग्ल-मैसूर युद्ध में सेना की एक टुकड़ी का

संचालन कर रहे थे ने सर्वप्रथम त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण का प्रस्ताव वेलेजली के सामने रखा था। लैम्बटन ने फ्रांस से इस सिद्धान्त के बारे में जाना था जहां इसके आधार पर सर्वेक्षण कार्य आरम्भ हो चुका था। वेलेजली ने इस सर्वेक्षण को आसानी से स्वीकृति प्रदान कर दी क्योंकि वेलेजली को एक भरोसेमन्द व लम्बे समय तक इस्तेमाल की जा सकने वाले मानचित्र की आवश्यकता थी जिसमें Topographical survey द्वारा प्राप्त मानचित्र अक्षम था।[१] वहीं लैम्बटन का इसमें गुप्त उद्देश्य संभवतः यह था कि वह इस विधा के द्वारा पृथ्वी की परिधि का मापन करके पृथ्वी के सही आकार का पता लगाना चाहता था। यह ज्ञातव्य है कि मानचित्र की आवश्यकता सैन्य विभाग ने सबसे अधिक महसूस की थी।

येन केन प्रकारेण यह सर्वेक्षण १८०२ ई. में आरम्भ हुआ जिसे अन्ततः १८१८ ई. में जाकर कम्पनी की मंजूरी मिली और इस सर्वेक्षण का नाम रखा गया ''The Great Trigonometrical Survey fo India''। सैन्य सहायता व प्रशासकीय सुदृढ़ता के उद्देश्य के साथ प्रारम्भ हुए सर्वेक्षण में फ्रांस द्वारा भारतीय प्रायद्वीप के उत्तर-पश्चिम में दी गई दस्तक तथा रूस के साथ सम्बन्धों में खटास व भय ने उत्प्रेरक का काम किया।[२] इसके अतिरिक्त कम्पनी कहीं न कहीं विज्ञान के सिद्धान्तों के व्यावहारिक उपयोग द्वारा यूरोप को एक बेहतर व उन्नत सभ्यता के रूप में प्रतिबिम्बित करना चाह रही थी जिससे भारत के लोग खुद को हीन अनुभव करें और वह मान लें कि पाश्चात्य मस्तिष्क अति तीक्ष्ण है और वहां के लोग सभ्य हैं जिससे कि उन्हें मूल निवासियों (Natives) पर शासन करने में आसानी हो।

लैम्बटन जो अवश्य ही तीक्ष्ण मस्तिष्क का स्वामी था ने १८०२-१५ ई. के बीच गोवा से मसुलीपट्टम तथा केपकोमोरिन से निजाम के राज्य की दक्षिण सीमा तक का सर्वेक्षण किया। १८१८ ई. में कर्नल जॉर्ज एवरेस्ट इस सर्वेक्षण से जुड़े तथा १८२३ ई. में लेम्बटन की मृत्यु के बाद इस सर्वेक्षण के प्रमुख बने। १८३० ई. में एवरेस्ट को Surveyor General in India के पद पर नियुक्त किया गया तथा वे १८४३ ई. तक इस पद पर आसीन रहे।[३] इस समय में यह सर्वेक्षण अपनी नई ऊंचाईयों पर पहुंचा एवं मापन की यह नई तकनीक जोकि तुलनात्मक रूप से अधिक परिशुद्ध थी का भी विकास हुआ, यह सर्वेक्षण एक बृहद, कठिन व समय साध्य कार्य था। उपलब्ध साहित्यों से यह प्रतीत होता है कि यह सर्वेक्षण कुछ ब्रिटिश विद्वानों यथा लैम्बटन, एवरेस्ट व एनड्रयू स्कॉट वॉ द्वारा बन्द कमरे में प्रतिपादित किया गया था जिसमें भारतीयों का कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं रहा। परन्तु प्राथमिक स्रोतों में उपलब्ध जानकारी ठीक इसके विपरीत कहानी बयाँ करती है।

उदाहरण स्वरूप जॉन की (John keay) की रचना The Great Arc में केरल के पॉलीगर समुदाय जो कि अंग्रेजों के क्रियाकलाप से आशंकित रहते थे के द्वारा सर्वेक्षण के विरोध में किए गए उपद्रवों का वर्णन तो मिलता है परन्तु सर्वेक्षण में छोटे-मोटे कार्य करने वाले भारतीय मजदूरों व

कुलियों पर अंग्रेज अधिकारियों द्वारा किए गए अत्याचार, विभिन्न रोगों जैसे बुखार, पेचिश, सर्पदंश, इत्यादि से होने वाली मृत्यु के विषय में अत्यल्प वर्णन प्राप्त होता है। इस विषय की जानकारी के लिए हमें राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली में मानचित्र अनुभाग में प्राप्त प्राथमिक स्रोतों का सहारा लेना पड़ता है। जॉन जिन्होंने अवश्य ही एक महत्त्वपूर्ण विषय चुनने का प्रयास किया, संधान में परिश्रम किया परन्तु उपलब्ध स्रोतों के चयनात्मक अध्ययन के आरोप से खुद को वह निर्दोष साबित नहीं कर पाएंगे। हालांकि वे अपनी पुस्तक में एवरेस्ट की आलोचना में यह लिखते हैं कि ''प्रतिपादित कार्यों के लिए अपने अधीनस्थ कार्यकारिणी का जिक्र करना एवरेस्ट की प्रकृति में नहीं था।''[४]

चार्ल्स ई.डी. ब्लैक द्वारा संपादित संस्मरण ''**A Memoir on the Indian Survey (१८७५-९०)**'' में हमें भारतीय विषयों का छिटपुट वर्णन मिलता है जैसे कि – सर्वेक्षण के दौरान भारतीय किसानों की फसलों को नुकसान पहुंचता था जिसके मुआवजे की वे मांग उठाते थे जिसे कभी पूरा नहीं किया गया।[५] उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर हम यह मत प्रकट कर सकते हैं कि भू-सर्वेक्षण की प्रक्रिया जो कि अवश्य ही एक जटिल उपक्रम था, में भारतीयों ने कई बार अपनी इच्छा से जबकि कई बार जबरदस्ती भी इसमें योगदान दिया। अधिकारियों को छोड़कर भी समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग था जिसने इस सर्वेक्षण में योगदान दिया, जैसे – उपकरणों को ढोया, मलबा उठाया, जंगल साफ कर रास्ते बनाए, अधिकारियों को कंधों पर बैठाकर नदी-नाले पार करवाए इत्यादि। आज तक उनके योगदान को उचित स्थान प्राप्त नहीं हुआ है।

रामदेव राय "**Indian Journal of History of Science**" १९८६ ई. अंक २१ वें में लिखे अपने लेख में यह दावा करते हैं कि मध्यम वर्ग के युवाओं का (खासकर बंगाल का) एक बड़ा समूह था जिन्होंने स्थापित विभिन्न प्रशिक्षण संस्थानों से सर्वेक्षण के नियमों व प्रक्रियाओं का अध्ययन किया था तथा उन्होंने इन परियोजनाओं में सहायक के रूप में कार्य भी किया। यह भी संभव है कि उनमें से कुछ प्रशिक्षुओं ने क्षेत्रीय स्तर पर सर्वेक्षण के प्रयास किए होगें परन्तु पर्याप्त ज्ञान व उचित उपकरणों के अभाव में कार्य पूरा न हो सका या त्रुटियों की गुजांईश रही हो। यद्यपि लैम्बटन व एवरेस्ट अपने कार्य के प्रति पूरी ईमानदारी रखते थे तथापि पत्रों, खर्च ब्यौरों, रिपोर्टों के अध्ययन से कुछ अनियमितताओं की संभावना प्रकट होती है। जिसके विषय में विस्तृत चर्चा अगले अंक में की जाएगी।

माउंट एवरेस्ट या माउंट सिकदर?

हिमालय की सबसे ऊंची चोटी का नाम जॉर्ज एवरेस्ट के नाम पर रखा गया है। सर जॉर्ज एवरेस्ट प्रसिद्ध हैं क्योंकि उन्होंने ''Great Trigonometrical Survey'' जो कि सन् १८०० ई. में प्रारम्भ हुआ था उसको पूरा किया, जिससे कि हमें अपनी धरती के आकार के बारे में पता चला। हालांकि माउंट एवरेस्ट की ऊंचाई उनके समय में नहीं मापी जा सकी। इसका श्रेय बंगाल के एक

विद्वान **राधानाथ सिकदर** जिन्हें आधुनिक भारत का प्रथम वैज्ञानिक भी कहा जाता है, को दिया जाता है।

१८५२ की सर्दी की देर रात को देहरादून में स्थित सर्वेयर जनरल के कमरे के दरवाजे पर दस्तक होती है। सर्वेयर जनरल एन्ड्रयू वॉ जो कि सोने की तैयारी में थे बड़े दुखी मन से दरवाजा खोलते हैं। सामने एक मझोले कद का सांवला सा व्यक्ति खड़ा होता है जिसके हाथों में कुछ कागज के टुकड़े होते हैं जिन्हें वह एन्ड्रयू वॉ के हाथ में देता है। उन पन्नों को देखकर वॉ की आंखें खुली की खुली रह जाती हैं और चेहरे पर अप्रतिम मुस्कान दौड़ जाती है। जो व्यक्ति आया था वह इतना ही कहता है ''Sir, I think now we know the height of peak XV'' उन पन्नों पर वह सारी गणनाएं थीं जो चोटी XV को विश्व की सबसे ऊंची चोटी प्रमाणित करने का दावा कर रही थी। चोटी XV की ऊंचाई २९००० फुट आंकी गई थी। उनकी गणनाओं को काल्पनिक न माना जाए इसलिए इन्होंने इसे २९००२ फुट माना जितनी इस गणना में त्रुटि की गुजाईंश रहती थी।[६] रात गए दरवाजे पर दस्तक देने वाले व्यक्ति कोई और नहीं राधानाथ सिकदर थे जो उस वक्त सर्वे ऑफ इण्डिया में मुख्य गणक (Chief Computer) के पद पर नियुक्त थे।[७] यह पद उस समय किसी भारतीय को सर्वेक्षण विभाग में दिए जाने वाले पदों में सबसे ऊंचा था।

अगली सुबह जब वॉ ने इस चोटी का नाम राधानाथ सिकदर के नाम पर रखा जाना प्रस्तावित किया तब सिकदर ने साफ-साफ मना कर दिया तथा वॉ को उनके पूर्व जनरल सर जॉर्ज एवरेस्ट का नाम सुझाया, जिन्होंने इस सर्वेक्षण को अन्तिम रूप दिया था। १८४३ में सेवानिवृत होने के बाद एवरेस्ट अपने देश वापस जा चुके थे।

जेवियर येन्स (**Javier Yanes**) अपने लेख ''**The Man who didn't want Everest to bear his name**'' जो कि उनके ब्लॉग ओपन माइण्ड (Open Mind) पर उपलब्ध है, दावा करते हैं कि खुद एवरेस्ट ने भी सिकदर के इस विचार का विरोध किया था। उनका तर्क यह था कि लिपि के अन्तर की वजह से उनके नाम को देवनागरी में लिखा नहीं जा सकेगा और न ही भारतीय इसका सही-सही उच्चारण कर पाएंगे। इस विषय पर चर्चा करते हुए हमें एक और बात ध्यान में रखनी चाहिए कि यह चोटी जो कि भौगोलिक रूप से नेपाल, तिब्बत व चीन के मध्य है कभी भी ब्रिटिश सत्ता के कब्जे में नहीं रही।

इस विषय पर चिन्तन व सत्य के संधान की आवश्यकता की गंभीरता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि पिछले दो दशकों से चीनी समाचार पत्रों में माउंट एवरेस्ट का नाम बदलकर ''को-मो-लुं-ग-मा'' करने की मांग जबरदस्त तरीके से उठाई जा रही है। ५ अक्तूबर २००२ को चीन के समाचार पत्र ''पीपल्स डेली'' में एक लेख आया जिसमें इस चोटी का नाम बदलकर ''को-मो-लुं-ग-मा'' करने की सबसे पहली जोरदार वकालत की गई थी। तब से कई बार इस मुद्दे पर

चीन में बहस होती रही है और चीन ने इस मुद्दे को विभिन्न मंचों से उठाया है। यह इस चोटी का तिब्बती पारम्परिक नाम है। भारतीय सरकार इस विषय पर अपना प्रखर पक्ष रखने में अभी तक पूर्णतः असफल रही है। क्योंकि हम भूल चुके हैं कि इस माउंट एवरेस्ट की ऊंचाई ज्ञात करने वाला व्यक्ति कोई भारतीय था, हमने यह भी भुला दिया है कि सर्वेक्षण के दौरान हमारे सैंकड़ों लोग बाघ, चीतों आदि जानवरों द्वारा मार दिए गए, नदी की तेज धारा में बह गए, पेचिश, पीलिया व बुखार इत्यादि से पीड़ित होकर उन्होंने बिस्तर पकड़ लिया था।[८]

२१वीं सदी में जब भारत खुद को विश्व गुरु व महत्वपूर्ण विश्व शक्ति के रूप में देखता है यह आवश्यक है कि वह अपने राष्ट्र के उन व्यक्तित्वों जिन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में भारत की उपस्थिति को विश्व पटल पर मजबूती प्रदान की उनकी पहचान करें व उन्हें उचित स्थान प्रदान करें। इस प्रकार के प्रयासों में श्री राधानाथ सिकदर का नाम सुनहरे अक्षरों में स्वतः समावेशित हो जाएगा।

संदर्भ :

1. Roy, R.D. (1986) The Great Trigonometrical Survey in Historical Perspective, Indian journal of history of science 21(1) Pp.22-32
2. Kipling, Rudyard (1994), Kim , Macmillan & Company, New York city USA
3. Roy, R.D. (1986) The Great Trigonometrical Survey in Historical Perspective, Indian journal of history of science 21(1) P- 40
4. Keay, John (2000), The Great Arc, HarperCollins publisher, London. Pp. 67-68
5. Black, Charles E.D. (1891) A Memoir on the Indian Survey (1875-90), London.
6. Collection of letters (Survey of India), Vol - 62, Cartography section National Archives of India, New Delhi, P- 295
7. Keay, John (2000), The Great Arc, HarperCollins publisher, London. Pp. 165-166
8. Ibid. Pp. 70-73

एम.ए. इतिहास,
हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय
धर्मशाला, जिला कांगड़ा (हि.प्र.)

दशगुरु परम्परा के प्रथम गुरु श्री नानक देव जी के काव्य में समकालीन चित्रण

डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री

गुरु नानक देव जी के विशाल काव्य में पन्द्रहवीं शताब्दी की सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनैतिक स्थिति का चित्रण देखा जा सकता है। मध्यकालीन भक्तिकाल के साधकों में शायद गुरु नानक देव अकेले ऐसे साधक हैं जिन्होंने तत्कालीन सामाजिक-राजनैतिक-सांस्कृतिक स्थिति पर इतनी तल्ख और स्पष्ट टिप्पणियां की हैं। दरअसल गुरु जी ने अनेक स्थानों पर इस बात का जिक्र किया है कि भारतीयों पर इस्लाम का प्रत्यक्ष परोक्ष प्रभाव पड़ रहा है। बहुत से भारतीय तो विदेशी मुगल शासकों को प्रसन्न करने के लिए ही उनकी संस्कृति और सभ्यता की नकल करते हैं। गुरु नानक देव जी सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग की चर्चा करते हुए कहते हैं कि प्रत्येक युग में एक वेद प्रमुख था लेकिन कलियुग की तो गति निराली है। कलियुग में अथर्ववेद की प्रमुखता थी लेकिन इस कालखंड तक आते-आते भारत का परिदृश्य बदल गया।

कलि महि वेदु अथरवणु हूआ नाउ खुदाई अलहु भइआ ।
नील वसत्र ले कपड़े पहिरे तुरक पठाणी अमलु कीआ ।। (आसा, वार, महला १)

नीले वस्त्र पहन कर मध्य एशिया से तुर्क आए और उन्होंने भारत पर कब्जा कर यहां अपना शासन जमा लिया। कलियुग में अथर्ववेद तो था लेकिन इस युग में परमात्मा का नाम खुदा और अल्लाह हो गया। अब ईश्वर इसी नाम से पुकारा जाएगा।

विदेशी शासकों द्वारा भारतीयों का किस प्रकार दमन किया जा रहा है, उन पर अत्याचार किया जा रहा है और इसमें कुछ भारतीय भी शामिल हो गए हैं, इसका उल्लेख नानक देव जी ने किया है –

हरणां बाजां तै सिकदारां एन्हा पड़िहआ नाउ ।।
फांधी लगी जाति फहाइनि अगै नाहीं थाउ ।।
सो पड़िआ सो पंडितु बीना जिन्हीं कमाणा नाउ ।।
पहिलो दे जड अंदरि जमै ता उपरि होवै छांउ ।।
राजे सीह मुकदम कुते ।।
जाइ जगाइन्हि बैठे सुते ।।
चाकर नहदा पाइन्हि घाउ ।।
रतु पितु कुतिहो चटि जाहु ।।

जिथै जीआं होसी सार ।

नकीं बढीं लाइतबार ।। (मलार, वार, महला - १)

अर्थात् भारत में आपसी कलह व भेद का उल्लेख करते हुए नानक कहते हैं कि जिस प्रकार पालतू हिरण और बाज अपनी ही जाति के लोगों को फंसाने में सहायता करते हैं उसी प्रकार कुछ भारतीय भी अपने ही भाईबन्दों को फंसवाने का काम कर रहे हैं। इसी प्रकार के धोखेबाज लोगों की सरदारी हो गई है। वही हुकूमत के नजदीक हैं। इस प्रकार का धोखा करने वाले लोग विद्वान हैं अर्थात् देश का आम आदमी तो फिर भी विदेशी शासकों से दूरी बनाए हुए हैं लेकिन पढ़ा लिखा तबका ही सत्ता के हाथों बिक गया है। ये लोग अपने स्वजनों को ही फंसे में फंसा रहे हैं। जिन को नेतृत्व करना चाहिए था, वही बिक गए। ऐसे लोगों को मरने के बाद ईश्वर के घर में भी स्थान नहीं मिलेगा। दरअसल पढ़े लिखे तो उन्हें कहना चाहिए, जिन्होंने भगवान की सेवा की है, ऐसे लोग ही पंडित कहलवाने के हकदार हैं। वही चतुर सयाने हैं। वे नहीं जो स्वदेश के अपने लोगों को ही फंसे में फंसा रहे हैं। इस समय ऐसे लोगों की ही जरूरत है। लेकिन ये काम इतना आसान नहीं है। पहले बीज धरती में जाता है। फिर समय पाकर ही अंकुरित होता है। धीरे-धीरे बढ़ता है। बड़ा होने पर ही छाया करता है। यह प्रक्रिया लम्बी है। परन्तु इस समय जो विदेशी शासक आ गए हैं वे हिंसक और अत्याचारी हैं। शासक शेर बने बैठे हैं और उनके दीवान या चौधरी शिकारी कुते बने हुए हैं। ये दोनों मिलकर प्रजा को चैन से सोने नहीं देते। ये मानो प्रजा का घाव कर उनका खून चूस रहे हैं। वे प्रजा को शान्ति से रहने नहीं देते। उनकी बेटियाँ तक नोच रहे हैं। इनके नौकर अपने तेज और तीखे नाखूनों से लोगों पर घाव कर, रक्त चूसते हैं। जब कहीं न्याय होगा तो ऐसे अत्याचारियों की नाक काट ली जाएगी।

गुरु नानक देव जी के पदों को आधार बनाकर उत्तरी भारत की सन्त परम्परा के प्रणेता परशुराम चतुर्वेदी, नानक काल की स्थिति का उल्लेख करते हुए कहते हैं, ''अब हिन्दुओं में से कोई वेद शास्त्रादि को नहीं मानता। अपितु अपनी ही प्रशंसा में लगा रहता है। उनके कान व हृदय सदा तुर्कों की धार्मिक शिक्षाओं से भरते जा रहे हैं और मुसलमान कर्मचारियों के निकट एक दूसरे की निन्दा करके लोग सबको कष्ट पहुंचा रहे हैं। वे समझते हैं कि रसोई के समय चौका लगा देने मात्र से हम पवित्र हो जाएंगे।'' बहुत से भारतीय भी विदेशी इस्लामी शासन में कर्मचारी हो गए थे। वे विदेशी और विधर्मी शासकों की परोक्ष रूप में सहायता ही कर रहे थे। वे उनके हस्तक बन चुके थे। जब घर के लोग ही शत्रु का साथ देने लगे तो क्या आशा की जा सकती है? (रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ. ३९७-३९८)

उस समय के शासकों के राज्य का वर्णन गुरु नानक देव जी इस प्रकार करते हैं –

कलि काती राजे कासाई धरमु पंख करि उडरिया।।

कुडू अमावस सचु चन्द्रमा दीसै नाही कह चडिआ ।।
हउ भालि विकुन्नी होई ।। आधैरै राहु न कोई ।।
विचि हउमै करि दुखु रोई ।। कहु नानक किनि विधि गति होई ।।

(माझ, वार, महला - १)

डॉ. मनमोहन सहगल इसकी व्याख्या निम्नानुसार करते हैं, 'स्वाभाविक बात है कि आक्रमणकारी को जहां अधिक कठोरता का सामना करना पड़ता है, अधिक हानि उठाना पड़ती है, विजयी होने के पश्चात् उस क्षेत्र से वह भयंकर प्रतिशोध लेने से टलता नहीं। यही दशा पंजाब की भी हुई। पंजाब मुस्लिम आक्रमणकारियों द्वारा संभवतः सर्वाधिक दलित प्रदेश बना। यहां की हिन्दु जनता इतनी दूर तक अपमानित की गई कि स्वाभिमानी के लिए जीना दूभर हो गया। गुरु नानक देव का कथन है कि इस युग में राजे स्वयं कसाई बन बैठे। पुराना आदर्श, कि राजा प्रजा का पिता होता है, समाप्त हो चुका है। रक्षक ही भक्षक बन बैठे हैं। उनमें धर्म नाम का कोई तथ्य उपलब्ध नहीं है। वह तो जैसे पंख लगाकर उड़ गया है। चारों ओर मिथ्या का प्रसार है, सत्य की ज्योति कहीं दिखाई नहीं देती। ऐसी अव्यवस्था देख नानक देव व्याकुल हो रहे हैं। अधर्म के अंधेरे में मार्ग नहीं मिल रहा। समूची जनता अंहकार में फंसी पथभ्रष्ट हो रही है। (मनमोहन सहगल, गुरु ग्रन्थ साहिब एक सांस्कृतिक सर्वेक्षण, पृ. ४-५)

गुरु नानक कहते हैं कि विदेशी शासकों के कारण भारतीयों की स्थिति दयनीय हो गई है। स्थिति यह हो गई हैं कि –

आदि पुरखु कऊ अलहु कहीए, सेखां आई वारी ।
देवल देवतिआ करु लागा, ऐसी कीरति चाली ।।
कूजा, बांग, निवाज, मुसला, नील रूप बनवारी ।
घरि घरि मीआ, सभनां जीआं, बोली अवर तुमारी ।
जे तू मीर महीपति साहिबु कुदरति कउण हमारी ।
चारे कुंट सलामु करहिगै धीरे-धीरे सिफति तुम्हारी ।। (बंसत, अष्टपदी, महला - १)

अर्थात् अब तो शेखों का ही बोलबाला हो गया है। इस्लामी शासकों के भय से आदिपुरुष परमात्मा को भी अल्लाह ही बोलना पड़ रहा है। शासन ने ऐसी व्यवस्था बना रखी है कि मन्दिरों और देवतों पर भी टैक्स देना पड़ रहा है। भारतीयों को अपनी पूजा पद्धति का भी इस्लामीकरण करना पड़ रहा है। पूजा के पात्र, ईश्वर का नामस्मरण, उसकी पूजा और पूजा स्थान सभी को इस्लामी रूप रंग देना पड़ रहा है। चारों ओर अजान ही आवाज सुनाई पड़ रही है। हालत यहां तक हो गई है कि बनवारी यानि कृष्ण को भी नील वस्त्र धारी कहना पड़ रहा है। उनको नील वस्त्रों में रखना पड़ रहा है। केवल इसलिए ताकि विदेशी शासक प्रसन्न रहें। घर-घर मियां-मियां शब्द गाया जा रहा है। लोगों

की बोली ही बदल गई है। अर्थात् विदेशी शासकों को प्रसन्न करने के लिए वे अपनी भाषा छोड़ कर उन्हीं की बोली बोलने लगे हैं। हे ईश्वर! तुम तो सर्वशाक्तिमान हो। यदि तुम अब भारतीयों को यही दिन दिखाना चाहते हो हमारी क्या विसात है। सब ओर सलाम ही सलाम हो रहा है। सब लोग मुगलों की प्रशंसा में ही लगे हुए हैं।

नानक देव लिखते हैं –

नील वसत्र पहिरि, होवहि परमाणु ।। (आसा, वार, महला -१)

अर्थात् अब मुगलों के शासन में तो भारतीयों को शासक के दरबार में नील वस्त्र यानि तुर्कों की तरह ही रहने से मान्यता मिलेगी। सचमुच बहुत से भारतीय भी विदेशी शासकों को प्रसन्न करने के लिए नीले कपड़े पहनने लगे थे।

नानक देव कहते है –

कलि कलवाली सरा निबेड़ी, काज़ी, क्रिशना होआ।।

वाणी ब्रह्मा वेदु अथरवणु करणी कीरति लहिआ।। (रामकली, अष्टपदी, महला -१)

अर्थात् इस कलियुग में विदेशी शासकों ने भारत में भी शरीअत को लागू कर रखा है। काजियों को ही अब कृष्ण बताया जा रहा है। कलियुग में ब्रह्म का अथरवण वेद ही वाणी है। किन्तु व्यवहार में कुछ और ही है।

कलि परवाणु कतेब कुराणु, पोथी पंडित रहे पुराण।

नानक नाऊ भइआ रहमाणु, करि करता तू एको जाणु।।

(रामकली, अष्टपदी, महला-१)

अब भारत में कुरान और इस्लामी मजहबी ग्रन्थों का ही बोलवाला है। भारतीय शास्त्रों को अमान्य किया जा रहा है। भारतीय विद्वानों का सम्मान नहीं बचा है। लोगों को विवश किया जा रहा है कि परमात्मा का इस्लामी नाम रहमान ही उच्चारित किया जाए। गुरु नानक आश्चर्यचकित हैं कि विदेशी शासक ऐसा क्यों कर रहे हैं। परमात्मा तो सर्वत्र एक ही है। लोग उसको विभिन्न नामों से पुकारते हैं। परन्तु विदेशी सुल्तान उसको केवल रहमान नाम से ही उच्चारित करने के लिए विवश क्यों कर रहे हैं?

गुरु नानक कहते हैं –

गऊ बिराहमण कउ करू लावहु गोबरि तरण न जाई ।

धोती टिका तै जपमाली धानु मलेछां खाई ।।

अन्तर पूजा पडहि कतेबा संजुम तुरका भाई ।।

छोडिले पखंडा नाम लईहे जाहि तरंदा ।। (आसा, वार, महला - १)

इस पद का एक प्रसंग भी है। लाहौर में किसी ने ब्राह्मण को एक गाय दान में दी। ब्राह्मण

गाय लेकर घर जा रहा था। रास्ते में नदी थी। नदी के घाट का ठेका मुगल सरकार से किसी खत्री ने लिया हुआ था। उसने ब्राह्मण की गाय को पार करने के लिए टैक्स की मांग की। इसलिए ब्राह्मण को गाय समेत वहीं रूकना पड़ा। तभी गाय ने गोबर कर दिया। खत्री ने तुरन्त वह गोबर उठा लिया ताकि उससे चौका लीप कर उसको पवित्र किया जा सके। तब नानक ने कहा -इतना पांखड क्यों कर रहे हो। गऊ और ब्राह्मण पर टैक्स लगा रहे हो और उसी गाय के गोबर से अपना चौका पवित्र करना चाहते हो। उसके बल पर भवसागर पार करना चाहते हो। धोती पहन कर और माथे पर टीका लगा कर घूमते हो। माला जपते रहते हो। लेकिन खाते तो मलेच्छों का ही हो। तुर्कों से डर कर पूजा घर के अन्दर छिप कर करते हो लेकिन उनको प्रसन्न करने के लिए प्रत्यक्ष में कुरान पढ़ते ही नहीं बल्कि तुर्कों की तरह रहते भी हो। नानक देव आगाह करते है कि यह पाखंड छोड़ दो और उस भगवान का नाम लो जो भवसागर से मुक्ति देता है। नानक देव ने इस कष्टकारी स्थिति पर टिप्पणी करते हुए विदेशी शासन की सेवा में लगे इन कर्मचारियों को लताड़ा है। मध्यकालीन सन्त परम्परा के विद्वान परशुराम चतुर्वेदी इस प्रकार के भारतीयों के आचरण की व्याख्या निम्न अनुसार करते हैं – ''गौ तथा ब्राह्मण पर कर लगाते हो और साथ ही धोती, टीका और माला भी धारण किए रहते हो। यह पाखंड नहीं तो क्या हैं? तुम अपने घर में तो पूजा पाठ करते हो और बाहर कुरान के हवाले दे देकर तुर्कों से सम्बन्ध बनाते रहते हो। यह पाखंड छोड़ क्यों नहीं देते।'' (रामधारी सिंह दिनकर, ''संस्कृति के चार अध्याय'' में उद्धृत, पृ. ३९७-३९८) दरअसल कुछ सांसारिक सुख सुविधाओं के लिए कुछ भारतीय भी विदेशी शासकों को प्रसन्न करने के लिए उनके साथ मिल गए थे। वे ऊपर से सांस्कृतिक प्रतीकों को धारण किए रहते थे लेकिन भीतर से विदेशी इस्लामी शासकों के साथ हो गए थे। घर के भीतर तो अपनी परम्परागत पूजा पद्धति का अनुसरण कर रहे हैं और बाहर विदेशी सुल्तानों से डरते हुए कुरान का पाठ करते हैं। इस्लामी तौर तरीकों को धारण कर रहे हैं।

केवल पूजा पाठ का ही इस्लामकीकरण नहीं हो रहा था बल्कि कुछ भारतीय अपनी भाषा छोड़कर विदेशी शासकों की भाषा भी अपनाने लगे थे। सामाजिक लोक व्यवहार में इस्लामी तौर तरीके अपनाने लगे थे। नानक देव जी इसी को लक्षित करते हुए कहते हैं –

खत्रीयां त धरमु छोड़िया, मलेछ भाखिआ गही ।
सृसटी सभ एक बरण होई धरम की गति रही ।। (धनासरी, शब्द, महला - १)

अर्थात् जिन क्षत्रियों पर देश और धर्म की रक्षा का उत्तरदायित्व था, उन्होंने विदेशी मुस्लिम शासकों के भय से अपना धर्म ही त्याग दिया और विदेशियों की मलेच्छ भाषा में ही बोलने लगे। लोगों में तमोगुण का प्रभाव होने लगा। सृष्टि एक वर्ण हो गई अर्थात् विदेशी तुर्कों ने तो किसी वर्ण के साथ लिहाज नहीं किया। सभी को एक रस्सी से बांध कर ही घसीटा। नानक जाति भेद के विरोध में थे। इसलिए एक वर्ण का अर्थ-दास्ता में एक हो गए हैं।

दुर्भाग्य से मध्यकाल में जिस नेतृत्व इस पर संकट काल में भारतीय समाज को हताशा के गर्त से निकालने का दायित्व था, वह या तो ज्ञान का बोझ ढो कर ही स्वयं को गौरवान्वित कर रहा था या फिर चुपके से विदेशी शासकों के दरबारों में ही दुबक गया था। वह केवल वेद पढ़ रहा था उसके अर्थ की साधना नहीं कर रहा था। ऐसी स्थिति में नव मतान्तरित वर्ग, मुल्ला मौलवियों की व्याख्याओं के शोर में अपनी परम्परा को नकारने के रास्ते पर चल पड़ा था। विदेशी अरब तुर्क शासकों को यही अनुकूल लगता था। इसीलिए यहां के नव मतान्तरित समाज को 'नकार आन्दोलन' की ओर धकेला जा रहा था। उनका प्रयास था कि इनकी देशी स्थानीय जड़ों को उखाड़ दिया जाए। लेकिन मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तक प्रयास कर रहे थे कि मतान्तरण के बावजूद इनकी जड़ों को इसी मिट्टी और समाज में बचा कर रखा जाए। यदि इसमें सफलता मिल गई तो विदेशी इस्लामी आक्रान्ताओं का मतान्तरण आन्दोलन अपने प्रभाव और उद्देश्य में निष्फल हो जाएगा। भारतीय परमपरा इतना तो जानती ही थी कि राम और रहीम में केवल शब्द का अन्तर है, अर्थ में कोई भेद नहीं है। इसलिए ये अर्थ का पीछा कर रहे थे। अर्थ का पीछा करने से ही इस विदेशी प्रयास को मात दी जा सकती थी। लेकिन विदेशी आक्रमणकारी चाहते थे कि बहस शब्द तक ही सीमित रहनी चाहिए, तभी मतान्तरण से राष्ट्रान्तरण तक पहुंचा जा सकेगा। मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तक जानते थे कि यदि संकट के इस काल में 'विचार' न किया गया तो भविष्य के समाज के लिए सचमुच संकट खड़ा हो जाएगा। बिना पढ़े, जाने बूझे और उस पर विचार किए बिना विरासत को 'अस्वीकृत' कर देना, भविष्य में भारत की पहचान को ही समाप्त कर देगा। इसलिए महापुरुष नकारने से पहले विचार करने पर बल देते हैं। यदि विचार न किया तो विदेशी आन्धी में जमीन से पैर उखड़ जाने का खतरा तो बना ही रहेगा।

भारतीय और भारतीय का संघर्ष

उस समय एक और सांसारिक समस्या भारत में पैदा हो गई थी। जो भारतीय मतान्तरित होकर मुसलमान हो गए थे उनमें और शेष भारतीयों में वैमनस्य बढ़ रहा था। मध्यकाल के साहित्य में इसे हिन्दु मुस्लिम वैमनस्य के रूप में चित्रित किया गया है। वास्तव में मुसलमानों की दो श्रेणियां थीं। पहली श्रेणी में अरब, तुर्क, मुगल व पठान थे जो हमलावर थे और शासक बन बैठे थे। शासक वर्ग का होने के कारण इनकी संख्या बहुत कम थी। दूसरी श्रेणी के मुसलमान वे भारतीय थे जो विभिन्न कारणों से मतान्तरित हो गए थे। समय के साथ-साथ इन मतान्तरित भारतीयों की संख्या भी बढ़ती जा रही थी और इनको लेकर समाज में तनाव भी बढ़ता जा रहा था। मध्यकालीन भक्तिकाल में बहुत से साधकों या साधु सन्तों ने प्रयास किया कि मतान्तरण के बावजूद भारतीय समाज में आन्तरिक एकता बनी रहे। समाज की समरसता खंडित न हो। लेकिन मतान्तरित हो चुके भारतीयों को शेष समाज हेय दृष्टि से देखने लगा था। जो संकट काल में अपने समाज को छोड़ गया, स्वभाविक ही

उसको हेय दृष्टि से ही देखा जाएगा और उनका सामाजिक बहिष्कार होने लगा। यह लड़ाई हिन्दु और मुसलमान की लड़ाई नहीं थी बलिक यह तो भारतीय और भारतीय के बीच की लड़ाई थी। एक ओर वे भारतीय थे जिन्होंने विपरीत परिस्थितियों में भी अपने पुरखों की विरासत को नहीं छोड़ा था और दूसरी ओर वे भारतीय थे जो या तो विदेशियों की तलवार से डरकर या फिर आर्थिक कारणों पुरखों की विरासत छोड़कर मुसलमान हो गए थे। भारतीयों के ही इन दो समुदायों में दरारें बढ़ने लगी थीं जिससे सामाजिक ताना बाना दरकने लगा था। मुसलमान बन चुके भारतीयों को समाज एक प्रकार से बहिष्कृत करने लगा था। उनके साथ सामाजिक संवाद व सहभागिता के तमाम सूत्र धीरे-धीरे सूखने लगे थे। गुरु नानक जानते थे कि विवशता में पुरखों की विरासत छोड़ चुके भारतीय समुदाय को मरहम की जरूरत है न कि प्रताड़ना की। इसलिए उन्होंने बड़े स्तर पर इन दोनों समुदायों को पुनः एक ही व्यास आसन पर बिठाने के प्रयास किए। उधर जो भारतीय मतान्तरित हो गए थे वे अपने आपको विदेशी शासकों का हम मजहब मानकर, स्वयं को बाकी भारतीय समाज से बड़ा और अलग मानने लगा। इस नव मतान्तरित भारतीय समाज के मुल्ला मौलवी वही सैयद हुए जो या तो आक्रमणकारी अरबों/तुर्कों की सेना के साथ भारत में आए थे या फिर जब खिलाफत अर्थात् इस्लाम की विरासत को लेकर अरबों और तुर्कों में बहस छिड़ी, तब तैमूरलंग की मार खाकर या उसकी मार के डर से भाग कर भारत में आए थे। इन्हें भारत में मतान्तरित मुसलमानों के रूप में लाखों भारतीय यजमान के रूप में सहज भाव से उपलब्ध हो गए, इसलिए इनकी आजीविका आसानी से चल सकती थी। ये मौलवी नव मतान्तरित भारतीयों को इस्लामी रूढ़ियों में बांधने/घेरने की कोशिश में लगे हुए थे। गुरु नानक देव जी ने प्रयास किया कि सभी भारतीयों, जो विदेशी सताधीशों के अत्याचारों या जजिया से मुक्ति हेतु या लालच से मुसलमान भी बन गए थे, उनमें एक आन्तरिक एकता बनी रहे। इसलिए वे बार-बार समझाते रहे कि राम और रहीम एक ही हैं। राम को छोड़कर रहीम की शरण में चले जाने से कोई मौलिक अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि राम और रहीम दोनों ही उस ईश्वर के नाम हैं। जो लोग राम की जगह रहीम का जाप करने लगे हैं, वे भी पुरातन विरासत का ही हिस्सा हैं। गुरु नानक के साहस ओर बेलाग बात कहने से ऐसे लोगों में भी पुनः आशा जगने लगी थी। जो पुरखों की विरासत छोड़ कर जा चुके थे वे फिर वापिस गुरु की शरण आने लगे थे। एक नया वातावरण बनने लगा था। यद्यपि अब तक पश्चिमोत्तर भारत का बहुत बड़ा भाग इस्लाम में मतान्तरित हो चुका था लेकिन यह निश्चय से कहा जा सकता है कि गुरु नानक देव जी के इस नव अभियान से इस प्रक्रिया को कुछ सीमा तक विराम लगा। यह विराम इस सीमा तक लगा कि दशम गुरु तक आते-आते कवि को कहना ही पड़ा, न कहूं अबकी न कहूं तबकी, होते न गोविन्द सिंह तो सुन्नत होती सब की।

गुरु जी पूरे देश में घूमने से इतना तो समझ ही गए थे कि देश के लोगों को विभाजित करने में बहुत सीमात तक जाति व्यवस्था भी जिम्मेदार है। अलग-अलग जातियों के अपने-अपने समाज ही

नहीं बने हैं, बल्कि अनेक स्थानों पर वे परस्पर विरोधी भी हो गए हैं। कोढ में खारिश यह कि जाति का निर्णय किसी व्यक्ति के करम नहीं करते बल्कि जाति का निर्णय उसके जन्म से होता है। इसलिए गुरु नानक जी ने बार-बार आग्रह किया कि भारतीयों को जाति के इन झूठे बन्धनों से निकल जाना चाहिए।

परशुराम चतुर्वेदी का कथन है, ''गुरु नानक देव की कतिपय रचनाओं से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जो दृष्टिकोण उन्होंने अपने समक्ष उपस्थित समस्याओं का समाधान ढूंढने में अपनाया था, वह साधारण नहीं कहला सकता था। वह किसी धार्मिक सुधारक मात्र का न होकर, तत्त्वतः एक ऐसे भारतीय, हिन्दू का भी रहा जिसके कोमल हृदरय को, विदेशी तुर्कों के अनवरत निष्ठुर आक्रमण तथा उनके प्रभावों से ठेस लगी थी।'' परशुराम चतुर्वेदी, संत साहित्य में गुरु नानक की देन, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार द्वारा प्रकाशित पुस्तक, गुरु नानक में संकलित, पृ. २४)

नानक देव ने पाखंड का विरोध किया है। व्यक्ति के मन और कर्म में सामजस्य होना चाहिए। यदि दोनों में सामजस्य नहीं है तो वह पाखंड बन जाता है। चिन्तन और आचरण एक जैसा होना चाहिए। यदि दोनों में अन्तर है तो सारा चिन्तन और क्रियाएं भी मात्र दिखावा हो जाती है। ऐसा व्यक्ति समाज में विश्वास पैदा नहीं कर सकता। नानक देव जिस युग में रह रहे थे, उस युग में ऐसे लोगों की, ऐसे नेतृत्व की आवश्यकता थी जिनका आचरण आम जन में विश्वास पैदा कर सके, सबसे बढ़ कर समाज को निराशा के गर्त से निकाल सके। नानक देव ने पूरे देश में अपनी लोक चेतना यात्राओं के माध्यम से यही विश्वास पैदा किया।

गुरु नानक देव जी को जिनका जन्म के सयम ही पंडित हरिदयाल ने विलक्षण जातक बता दिया था, अब इन सभी प्रश्नों के उतर तलाशने थे। आध्यात्मिक क्षेत्र में भी और सांसारिक क्षेत्र में भी। बंजर हो चुकी जमीन को फिर से उर्वरा बनाना था। इसी के लिए नानक देव ने अपने चिन्तन व कार्य के लिए परम्परा स्थापित की। यदि पन्द्रहवीं शताब्दी में यह दश गुरु परम्परा न शुरू हुई होती तो सिकन्दर के वक्त से आक्रमणों को झेलता और परास्त करता पंजाब, मुगलों के अत्याचारों के आगे उसी प्रकार दम तोड़ देता जिस प्रकार पश्चिमोत्तर भारत या सप्त सिन्धु प्रदेश के अधिकांश हिस्से मसलन बलोचिस्तान, उत्तर पश्चिम सीमान्त प्रान्त, सिन्ध, गिलगित, बल्तिस्तान, दर्दस्तान, स्वात घाटी, कश्मीर, पश्चिमी पंजाब, इस्लाम मत में चले गए। यह दश गुरु परम्परा ही थी जिसने पूरे उतरी भारत को बंजर होने से बचा दिया।

कुलपति, हिमाचल प्रदेश
केन्द्रीय विश्वविद्यालय धर्मशाला,
जिला कांगड़ा (हि.प्र.)

जलियांवाला बाग नरसंहार : बलिदानी प्रथा

डॉ. प्रशान्त गौरव

सन् १८५७ ई. की महाक्रांति एवं प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद भारतीय इतिहास में एक क्रूर तथा वीभत्स घटना १३ अप्रैल, १९१९ को जलियांवाला बाग नरसंहार था। जलियांवाला बाग नरसंहार की परिस्थिति को समझने के लिए पहले पंजाब की तत्कालीन स्थानीय परिस्थिति एवं उनसे जुड़े हुए विदेशी परिस्थिति को समझना आवश्यक है जो किसी धर्म, जाति एवं वर्ग से संबंधित न होकर शुद्ध रूप में पंजाब की राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थिति एवं अंग्रेजों के विरूद्ध बनने वाले माहौल के साथ जुड़ा हुआ है।

अंग्रेजों द्वारा सैनिक भर्ती का मुद्दा पूरे भारत एवं विशेष रूप से पंजाब के साथ जुड़ा हुआ था। १८५७ के महान् क्रांति में अंग्रेजों की जीत अवश्य हुई थी पर आंदोलनकारियों द्वारा उनकी बड़ी दुर्गति की गई थी। यह उस समय की बात है जब पंजाबी सैनिक खासकर सिखों ने अंग्रेजों का साथ दिया था। अब तो पंजाबी पूरी तरह से अंग्रेजों के विरोधी बन गये थे।[१]

पंजाब के लोगों ने प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान अंग्रेजी शासन की खुलकर तन-मन-धन से मदद की थी ताकि महायुद्ध के बाद भारत में भी अंग्रेज मिश्र, सीरिया तथा इराक की भांति आत्म-निर्णय के सिद्धांत को लागू करेंगे[२] अर्थात् अंग्रेजी पिटारे से स्वयत्तत्ता की देवी प्रकट होगी, पर निकला भारत प्रतिरक्षा विधान १९१९ अर्थात् रॉलेट एक्ट अर्थात् फुंकारता हुआ काला सांप। अतः इसे काला बिल कहा गया।[३] इसके माध्यम से अंग्रेज पंजाब की राष्ट्रवादी गतिविधियों को पूरी तरह नियंत्रित करने की कोशिश में थे। रॉलेट कमिटी की रिपोर्ट जुलाई १९१८ ई. में प्रकाशित की गई। इस रिपोर्ट में भारतीय देशभक्तों को डाकुओं, कातिलों तथा लुटेरों के समान बताया गया[४] तथा इसमें शांति बनाए रखने के लिए कार्यपालिका को अतिरिक्त शक्तियॉ देने की सिफारिश की गई थी। रॉलेट एक्ट के खिलाफ न तो गिरफ्तार व्यक्ति के द्वारा और न ही उसके परिवार के किसी सदस्य के द्वारा कोई अपील हो सकती थी, न ही जूरी द्वारा पैरवी की जा सकती थी और न ही पीड़ित व्यक्ति को सफाई देने का कोई मौका दिया जाता था। नो दलील, नो अपील एंड नो वकील[५] के श्लोगन के आधार पर अमृतसर के समाचार पत्र ''वक्त'' ने २२ मार्च को एक कार्टून निकाला जिसमें बिल को कालानाग के रूप में दिखाया गया था। पटियाला विश्वविद्यालय से जलियांवाला बाग नामक एक पुस्तक छपी, जिसकी भूमिका में वी. एन. दत्त, लिखते हैं कि लोगों में एक झूठी अफवाह भी फैल गई कि लोग पुलिस को बिना बताये या पांच रूपये टैक्स दिये बिना न तो विवाह कर सकते थे और न ही शव को

जला सकते थें।[६]

डॉ. राजाराम[७] बताते है कि १९१९ से पहले गदर आंदोलन, तुर्की से संबंधित पैन-इस्लामिक आंदोलन एवं सिल्क पत्र पड्यंत्र, जबरदस्ती सैनिक भर्ती एवं युद्ध कर्ज, महामारी, असंतुलित मानसून एवं आर्थिक मंदी के कारण देश के लोग अंग्रेजों से पहले से ही खफा थे।[८] रॉलेट एक्ट पास होने के बाद ३० मार्च एवं ६ अप्रैल १९१९ को जोरदार सत्याग्रह के द्वारा अमृतसर के कटरा जयमल सिंह, हाल बाजार, नेशनल बैंक तथा अन्य मकानों को पार करते हुए शांतिपूर्वक ढंग से कैरिज ब्रिज (ऊंचा पुल), एचिसन बाग एवं रेल गोदाम रेलवे स्टेशन तक लोगों ने इस एक्ट का विरोध किया। स्थानीय नेता कन्हैयालाल भाटिया, चिकित्सा व्यवसायी डॉ. सत्यपाल, डॉ. सैफुद्दीन किचलू, डॉ. गुरबख्श राय, पं. कोटूमल, रतनचंद उर्फ रत्तो, चौधरी बुग्गामल आदि के द्वारा अमृतसर में सत्याग्रह किया गया।[९] गांधी जी भी पंजाब आ रहे थे पर उन्हें ९ अप्रैल को पंजाब के पलवल (फरीदाबाद के पास) स्टेशन पर ट्रेन से उतरते ही गिरफ्तार कर बंबई जेल भेज दिया गया।[१०] अमृतसर में सत्याग्रह की सफलता को देखते हुए १० अप्रैल १९१९ को दोनों महत्त्वपूर्ण नेता डॉ. सत्यपाल एवं डॉ. किचलू को जिलाधिकारी इर्विन ने अपने कोठी पर बुलाकर धोखे से १०:३० बजे सुबह गिरफ्तार कर लिया।[११] लोगों ने विरोधस्वरूप प्रदर्शन किया तथा बदले में अंग्रेजी टुकड़ी ने इस भीड़ पर हमला कर २० लोगों की जान ले ली।[१२] स्थानीय लोग आक्रमक हो गये और उन्होंने ७ अंग्रेजों को भी मौत के घाट उतार दिया।[१३] स्थिति को संभालने के लिए ११ अप्रैल को २ बजे दिन में शहर का प्रशासन जालंधर ४५ कैंटोनमेंट के सैन्य अधिकारी ब्रिगेडियर जनरल डायर को सौंप दिया गया।

जलियांवाला बाग नरसंहार : शहर में हो रहे अंग्रेजी अत्याचार एवं गोलीकांड का विरोध करने का निर्णय लिया गया। १३ अप्रैल १९१९ को ४:३० बजे शाम को जलियांवाला बाग में एक बैठक तय की गई। उस दिन उस बाग में वैशाखी एवं हिन्दूओं का नये साल के पहले दिन से संबंधित लोग, सिक्खों के दशवें और अंतिम गुरू गोबिंदसिंह जी द्वारा खालसा पंथ की स्थापना से संबंधित दर्शनार्थियों से भरा हुआ था। अमृतसर में तीन दिनों का एक मेला लगता था व गोविंदगढ़ में एक पशु-मेला लगता था। पुलिस ने इस पशु- मेले को बंद करवा दिया था। ऐसे में इस पशु-मेले में भाग लेने आए सैकड़ों लोगों के पास उस दिन के लिए कोई काम नहीं था। अतः वे भी घूमने-फिरने के उद्देश्य से बाग में चले आये थें। आसपास के मुहल्ले की औरतें शाम को बाग में बैठती थी। उनके बच्चे भी उनकी गोद में होते थें। इसी भीड़ के बीच में आंदोलनकारियों की सभा होनी थी।[१४] जनरल डायर २५ राइफलधारी गोरखे, ४० खुखरियों से लैस गोरखें, ५४ वीं सिक्ख और २९ वीं सिक्ख की २५-२५ अर्थात् ५० राइफलधारी, ४० अन्य गोरखा सैनिक दो बख्तरबंद गाड़ियों के साथ पहुंच गया।

जलियांवाला बाग सभा में महत्त्वपूर्ण लोग अनौपचारिक रूप से ३ बजे ही आना प्रारम्भ हो गए थे। बैठक में दो प्रस्ताव पारित किए गए। पहला, सरकार रॉलेट एक्ट को वापस ले, दूसरा, १०

अप्रैल को हुए गोलीकांड की निंदा करते हुए शहीदों के संबंधियों के प्रति सहानुभूति प्रकट की गई। ''वक्त'' समाचार-पत्र के संपादक दुर्गादास ने एक तीसरा प्रस्ताव पारित कर सरकार की दमन की नीति का विरोध किया। जनरल डायर ५० मशीनगनधारी सैनिकों के साथ बाग में प्रवेश कर गया। बाग के प्रवेश द्वार के बाईं ओर २५ गोरखा सैनिक निशाना साधे खड़े थे, तो दाईं ओर २५ बलोचिस्तानी सैनिक थे। जनरल डायर ने गोरखा एवं अफगानी सैनिकों के बाद अंग्रेजी सैनिकों को भी तैयार रखा था ताकि यदि गोरखा या अफगानी सैनिक गोली चलाने से इंकार कर देते तो अंग्रेजी सैनिकों का भी इस्तेमाल गोली चलाने के लिए किया जाता। एक दूसरे मत के अनुसार जनरल डायर ने इस हत्याकांड में गोरखा सैनिकों को नहीं बल्कि गोरे सिपाहियों को ही साथ रखा था ताकि वे आदेश का पालन सही ढंग से कर सके। सभा में हथियारों से लैस पुलिस के जवानों को देखकर लोगों में बेचैनी दिखने लगी थी। ऐसे में जनरल डायर ने तीन मिनट में लोगों को बाग से निकल जाने का आर्डर दिया। इस समय बृज गोपीनाथ बेकल के बाद दुर्गादास वैद्य बोलने वाले थे।[१४] तभी ५.५० बजे शाम[१६] को गोलियां चलनी शुरू हो गयी। लगभग दस मिनट तक निरंतर गोलियां चलती रहीं। चूहेदानी में फंसे चूहों की तरह उबलते हुए इस मानव समूह पर ३.३ बोर के १६५० गोलियों की बौछार की गयी।[१७] लेकिन लोग बाहर निकल नहीं सकते थें, क्योंकि वह बाग पूरी तरह से मकानों और उनकी दीवारों से घिरा था। एकमात्र संकरा मुख्य द्वार जहां से निकलने का रास्ता था, ब्रिटिश सैनिकों ने घेर रखा था। लोगों का बाग से बचकर निकलना कठिन था। अंदर एक कुआं था तथा एक टूटी-फूटी मजार जो लोगों की रक्षा करने में सक्षम नहीं थी। अपने आप को बचाने के लिए बहुत सारे लोग पास के ही कुएं में कूद गये थे। इनमें अधिकांश बच्चें, औरतें एवं वृद्ध थें। बाग में लगी पटिट्का के अनुसार १२० शव सिर्फ कुएं से निकाले गए। जिन लोगों ने पेड़ों पर या चारों ओर की दीवारों पर चढ़ने का प्रयास किया उन्हें भी गोली मारकर नीचे गिरा दिया गया। बाग के हर कोने में लाशों के ढेर लग चुके थे। आज भी दीवारों पर गोलियों के निशान दिखाई देते है जो अत्याचार तथा बलिदान की कहानी कहते हैं। बहुत से घायल लोग बाग की दीवार फांदकर बाहर निकल गए थे, वे गलियों में जाकर मर गये। पास की गलियों में भी सैकड़ों लाशें पड़ी हुई थी। सुल्तान सिंह विंड दरवाजे के साथ वाले प्रवेशद्वार के साथ वाली अगली गली में भी लाशों का ढेर लगा था। पानी पिलानेवाला एक बालक ऊधमसिंह घायल हो चुका था जिसने लाशों के ढेर के नीचे छिपकर एवं उसके बाद पेड़ पर चढ़कर अपनी जान बचायी थी। चलती हुई गोली और उससे मरनेवालों को उसने अपनी आंखों के सामने देखा था।

गोलीकांड के बाद बाग सहित पूरे शहर में मरघट के समान खामोशी छा गया थी। बाग के पास-पड़ोस में रहनेवाले जो लोग जलसे में भाग लेने आए थे उनके संबंधी उनकी खोज करने डरते-डरते वहां आने लगे थे। वे भयभीत होकर लाशों के ढेर में अपने संबंधियों की तलाश कर रहे थे।

उन्हें भय था कि कहीं सैनिक दस्ता दोबारा वहां आकर फायरिंग न करने लगे। कर्फ्यू अभी भी लगा था। घायलों को एक-एक बूंद पानी के लिए तरसता हुआ छोड़ दिया गया और जो जिंदा बच गये थे उनमें से भी कितने ही डाक्टरी सहायता न मिलने के कारण रात में ही तड़प-तड़प कर मर गए।

जलियांवाला बाग में हुए हत्याकांड में कितने लोग मारे गए, इस बात का कोई निश्चित एवं प्रमाणिक आंकड़ा नहीं मिल पाता है। दो सौ से तीन सौ लोगों को स्थानीय तौर पर प्राथमिक उपचार दिया गया था किंतु यह उपचार सभी लोगों को नहीं मिला था। बहुत से लोग घायल होकर जीवित भी बचे थे जिन्होंने कोई चिकित्सा सहायता नहीं ली थी। शायद उन्हें भय था कि ऐसा करने से उनपर सरकारी आदेश या कर्फ्यू आर्डर का उल्लघंन करने का दोष मढ़ दिया जाता। अतः जलियांवाला बाग में जमा लोगों की संख्या के लिए सिर्फ अनुमान ही लगाये गये।

हत्याकाण्ड के बाद खालसा कॉलेल के प्रिंसिपल जी.ए. वादन तथा अमृतसर स्थित एक अंग्रेज अधिकारी मिस्टर जैकव ने हत्याकाण्ड की रिपोर्ट लेफ्टिनेंट गवर्नर ओ. डायर एवं वरिष्ठ सैनिक अधिकारी मेजर जनरल बेनन को प्रस्तुत करते हुए बताया कि ''लगभग २०० लोग'' मारे गए हैं। पंजाब के मुख्य सचिव जे.पी. थॉम्पसन ने बताया कि २९१ लोग मारे गए थे। जिनमें २११ अमृतसर शहर के, २९ अमृतसर जिले के, ७ अन्य जिलों के थे जबकि ४४ व्यक्तियों की पहचान नहीं हो पायी थी। इनमें १८६ हिन्दू, ३९ मुस्लिम एवं २२ जाट सिक्ख एवं ४४ की जानकारी नहीं मिल पायी। सर्वेंट ऑफ इंडिया सोसाइटी के सदस्य एवं सेवा समिति के सचिव वी.एन. तीवराज मरनेवालों की संख्या ५३० बताते है। सरकारी रिपोर्ट एवं जनरल डायर बताता है कि १६५० राउंड गोलियां चली थी एवं उससे ३७९ व्यक्ति मारे गए थे एवं ११०० लोग घायल हुए थे। हंटर कमेटी के रिपोर्ट के आधार पर वी.एन. दत्त बताते है कि जनरल डायर ने फ्रांस की लड़ाई के अनुभव को आधार बनाकर निर्णय किया था कि औसतन छः गोलियॉ चलने पर एक व्यक्ति मारा गया था। इसलिए १६५० राउंड गोली चलने पर ३७९ व्यक्ति मरे होंगे।[१९] इनमें ३३७ पुरूष, ४० नाबालिग लड़के, १ सात वर्ष का छोटा बच्चा और १ छः सप्ताह का बच्चा था। जनरल डायर आगे स्वयं कहता है कि 'जलसे में १५-२० हजार व्यक्ति थे और उसने उनपर खुलकर गोली चलवाई थी।' तो सिर्फ ३७९ व्यक्ति ही कैसे मरेंगे? आगे कहता है कि 'उसने १६५० राउंड गोलियां चलवाईं जिनमें से शायद ही कोई खाली गया था।' मदन मोहन मालवीय[१६] बताते हैं कि वहाँ लोगों की संख्या १६-२० हजार थी और मरनेवालों की संख्या १००० के आसपास थी। कांग्रेस जॉच-समिति के अनुसार १२०० लोग मारे गये और २६०० के आसपास लोग घायल हुए थे। जो भी हो, निश्चित संख्या आज भी ज्ञात नहीं हो सका है क्योंकि बहुत-से लोग गोलियों के साथ-साथ भगदड़, इलाज के अभाव में, कुंए में कूदने से मारे गए थे। अमृतसर के डिप्टी कमिश्नर के कार्यालय में ४६४ शहीदों की सूची। जलियांवाला बाग कार्यालय में कुल ३८८ शहीदों की सूची उपलब्ध है।[२०] जलियांवाला नरसंहार के बाद पूरे पंजाब में मार्शल लॉ लगा दिया गया था। इसने

पूरे देश के लिए अंग्रेजों को नायक से खलनायक बना दिया।

मार्शल लॉ की विचारधारा ज्यादा पुरानी नहीं थी। १९०९ में लार्ड किचनर ने इसका पहली बार विचार दिया था, पर इसका उपयोग नहीं कर सका था। १८५७ की महाक्रांति के बाद गोरी सरकार का एक बड़ा अत्याचार जलियांवाला बाग गोलीकांड था जिसमें पहली बार सैद्धांतिक रूप में मार्शल लॉ लगाया गया था। इसके साथ ही यह बताया गया कि 'एक शव के साथ चार या पांच लोग ही जा सकते है और दोपहर २.३० तक दाह-संस्कार या दफनाना बंद हो जाना चाहिए।' लोग मातम के माहौल में जल्दी-जल्दी शवों को श्मशान तक ले गये। ३४४ शव बाग में पड़े रहें। अनुमानतः २०५ हिन्दू, ८५ केशधारी एवं ५४ मुसलमान थे।[२१]

इस दौरान सार्वजनिक तौर पर लोगों को कोड़े एवं बेंत लगाये गये। बिना किसी कारण बताये लोगों को गिरफ्तार कर महीनों जेल में रखा जाने लगा। अमृतसर शहर का पानी, बिजली का कनेक्शन काट दिया गया। भारतीय यात्रियों का ट्रेन, बस या निजी वाहन से कहीं आना जाना बंद करवा दिया गया। ईसाई यूरोपीय नन शेरवुड के साथ जहां बदसलूकी हुई थी वहां से हाथ-पैरों पर रेंगकर जाने की सजा दी गई थी। हंटर कमिशन में जब जनरल डायर से पूछा गया कि उसने ऐसा क्यों कि तो उसने जवाब देते हुए बताया कि 'मुझे लगा कि लोग रोड से न जाकर पीछे की गली से चले जाएगें। पर मुझे मालूम नहीं था कि घरों के पीछे कोई गली नहीं है।' दूसरी बार बेशर्मी से बताया कि 'लोग चाहते तो एक छत से दूसरी छत पर एवं दूसरी छत से तीसरी छत पर होते हुए कहीं भी आ-जा सकते थे पर लोग रोड से इसलिए जाते थे कि उन्हें रेंगना अच्छा लगता था।' मार्शल लॉ के दौरान सलाम करने की एक नयी प्रथा की शुरूआत की गई। लाला हरगोपाल नामक व्यक्ति को ठीक से सलाम न करने पर डायर और प्लोमर ने दो दिनों तक रामबाग में बैठाए रखा था, जबतक कि फौज के एक हवलदार ने उन्हें ठीक से सलाम करना नहीं सिखा दिया।[२२] इस घटना के बाद में मोटर की आवाज सुनते ही वह अपने आप खड़े हो जाते थे।[२३]

किसी भी सरकारी आदेश या फौजी आदेश को किसी भी मकान के बाहर चिपका दिया जाता था। बाद में यदि यह फौजी आदेश फटा मिलता था तो उस घरवालों को कड़ी से कड़ी सजा दी जाती थी। एक अन्य प्रयोग के दौरान किसी भी उच्च पदासीन व्यक्ति की निम्न पद पर नियुक्ति कर दी जाती थी। सभी वकीलों को विशेष सिपाही के रूप में नियुक्त कर दिया गया। वकील मंडल सार्वजनिक कार्यों में भाग लेता था, रॉलेट एक्ट के विरोधस्वरूप आंदोलनों में भाग लिया था, इसलिए उनके साथ यह दुर्व्यहार किया गया था। अमृतसर के सबसे पुराने एवं वृद्ध वकील लाला कन्हैयालाल को वृद्धावस्था में चपरासी लगा दिया गया। उच्च न्यायालय के वकील तथा नगरपालिका के सदस्य लाला बालमुकंद भाटिया को नौकर बना दिया गया। आत्मासिंह नामक एक शराब व्यवसायी को पकड़कर उससे क्वाटर-गार्ड का काम लिया गया।

लाहौर के ८०० ताँगें चालकों को सैनिक सेवा के लिए बलपूर्वक लगाया गया। लोगों की मोटरगाड़ियां व हथियार जब्त कर लिए गये। बिना अनुमति के कोई भी व्यक्ति सिविल कमांड से बाहर जाने के लिए रेल या अन्य वाहन का इस्तेमाल नहीं कर सकता था। लंगर जैसे पवित्र कार्य को भी बंद करवा दिया गया था। लाहौर में विद्यार्थियों को रेंगकर दिन मे दो बार अपनी हाजिरी दर्ज करवाने के लिए ब्रैडलॉ हाल (Bradlaugh Hall) में आना पड़ता था। डी.ए.वी. कालेज, दयाल सिंह कालेज तथा किंग एडवर्ड मेडिकल कालेज के खिलाफ कार्यवाही करते हुए सुबह एवं शाम फौजी अफसरों के सामने हाजिरी देने का आदेश दिया गया।[२४]

सामान्य अदालत, फौजी अदालत, समरी अदालत, जनरल डायर की अदालत, ओ. डायर की अदालत को हथियार के रूप में इस्तेमाल करते हुए करीब २००० लोगों को आजीवन कारावास, फांसी की सजा दी गई एवं संपति जब्ती की गई। वास्तव में इन सभी भावनाओं के पीछे ब्रिटिश लोगों का मनोवैज्ञानिक भय विद्यमान था। उन्हें भय था कि यदि तीस करोड़ भारतीय उठ खड़े हुए तो थोड़े से अंग्रेजों का नरसंहार करना कोई बड़ी बात नहीं थी।

जनरल डायर को इस हत्याकांड से कई लाभ मिलें। (१) ब्रिटिशर्स सहित कुछ भारतीय भी मानने लगे थे कि इस गोलीकांड ने पंजाब को बचा लिया। पंजाब में हत्याकांड की खुशी में कुछ लोगों के द्वारा कहीं भोज का आयोजन किया गया तो कहीं जनरल डायर को सम्मानित किया गया।[२५] सुंदरसिंह मजीठिया द्वारा जलियांवाला बाग हत्याकांड होने की खुशी में जनरल डायर को १३ अप्रैल १९१९ की रात्री को ही शाहीभोज पर आमंत्रित कर दिया एवं २१ अप्रैल १९१९ को जनरल डायर तथा ब्रिग्स को सुंदरसिंह मजीठिया, आरूढ़ सिंह एवं कुछ अन्य सिक्खों ने स्वर्णमंदिर में आमंत्रित कर सरोपा भेंटकर सम्मानित किया। इनका मानना था कि 'जनरल डायर ने बाग में गोलियॉ चलाकर पूरे अमृतसर को दंगाग्रस्त होने से बचा लिया था।'[२६] बाद में चलकर अंग्रेजों द्वारा पुरस्कारस्वरूप मजीठिया को १९२६ में नाइट की उपाधि दी गई थी। एक दूसरी घटना में महाराजा भूपिंदर सिंह ने जनरल डायर को टेलिग्राम के जरिये हत्याकांड पर बधाई भेजते हुए कहा था कि ''आपके (जनरल डायर) द्वारा की गई कार्यवाई (गोलीबारी) सही है और गवर्नर-जनरल भी इससे सहमत है।''

अमृतसर में दिसंबर १९१९ में हुए कांग्रेस अधिवेशन में पंडित मदनमोहन मालवीय ने इस आशय की घोषणा कर दी थी कि जलियांवाला बाग अब राष्ट्र की संपत्ति हो चुका है। वह एक तीर्थस्थान बन चुका था। अधिवेशन में आनेवाले कुछ लोगों ने उस बाग की मिटट्री को माथे पर लगाई तो कुछ ने उसे स्मृति रूप में अपने साथ ले गए। कभी कूड़ा-करकट से पटी रहनेवाली इस जगह को अब उद्यान का रूप दे दिया गया था। इसे उद्यान का रूप दिलाने में पंडित मदनमोहन मालवीय तथा स्वामी श्रद्धानंद की मुख्य भूमिका थी। जलियांवाला बाग की जमीन का मालिकाना हक हमीद सिंह जलियांवाला के ३४ वारियों के नाम था। अतः पूरी जमीन को १९२३ ई. में इसके ३४ मालिकों से

५,६५,००० रूपये में पंडित मदनमोहन मालवीय एवं स्वामी श्रद्धानंद के प्रयास से खरीदा गया। इन्होंने ६,२५,००० रूपये की लागत से बाग के मध्य में ३० फीट ऊंचें एक स्मारक स्तंभ का निर्माण किया। स्मारक के चारों स्तंभों पर हिन्दी, अंग्रेजी, पंजाबी एवं उर्दू में **१३ अप्रैल १६१६ शहीदों की याद में** लिखा हुआ है। इसका उद्घाटन १३ अप्रैल १६६१ में भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के द्वारा किया गया।

संदर्भ :

१. रिचर्ड जे. फॉक्स, लॉयन ऑफ द पंजाब कल्चर इन द मेकिंग, नई दिल्ली, १६८७, पृ. ७५; एलीनवुड तथा ए. डी. प्रधान (सं.), १६५.

२. सर माइकल ओ. डायर, इंडिया एज आई न्यू इट (१८८५-१६२५), लंडन, १६२५, पृ. २६४.

३. जवाहरलाल नेहरू, एन ऑटोबायोग्राफी, पृ. ४०.

४. भारत सरकार, गृहविभाग (पॉलिटिकल बी), पृ. ६६-७०, जुलाई १६१६.

५. प्रेमसिंह प्रेम, जलियांवाला बाग एपिसोड (सं.), देखें लेख, जलियांवाला बाग : ए सेज ऑफ सेक्रिफाइस, चंडीगढ़ साहित्य एकेडमी, चंडीगढ़, १६६५, पृ ३०.

६. गुरूशरण सिंह एवं अन्य, (सं.), जलियांवाला बाग, देखें लेख, वी. एन. दत्त, भूमिका, पटियाला विश्वविद्यालय, पटियाला, अप्रैल १६६४, पृ. ४; एन कॉल्विन, द लाइफ ऑफ जनरल डायर, लंडन, १६३१, पृ. १३४.

७. गुरूशरण सिंह एवं अन्य, जलियांवाला बाग (सं.) देखें आलेख, राजाराम, फैक्टर्स रेस्पॉन्सेबल फॉर जलियांवालाबाग ट्रेजडी, पृ. १६०-६३.

८. रूपर्ट फरनेक्श, मैस्सकर एट अमृतसर, पृ. १६४; हंटर कमिटी रिपोर्ट, पृ. ३३.

९. कमलेश मोहन, जलियांवाला बाग ट्रेजडीः ए काटालाइस्ट ऑफ इंडियान कंसिअसनेस (सं.), जलियांवालाबाग : ए सेज ऑफ सेक्रिफाइस, चंडीगढ़ साहित्य एकेडमी, चंडीगढ़, १६६५, पृ. १५

१०. सुशील माधव पाठक, भारत एवं विश्व का इतिहास, रॉची, १६८३, पृ. १८६.

११. एम.एस. त्यागी, आधुनिक भारत का इतिहास, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, १६६७, पृ. ११२.

१२. गुरूशरण सिंह एवं अन्य, (सं.) देखें लेख राजकूमार, सम रिफलेक्शनस आन जलियांवाला बाग ट्रेजडी एंड एनी बेसेंट्स पोलिटिक्स इन इंडिया, पृ. १६६.

१३. गृह विभाग, भारत सरकार, प्रोसिडिंग, जून, १६१६, नं. २३.

१४. सुशील माधव पाठक, पृ. १६०.

१५. सतीश चन्द्र मित्तल का अप्रकाशित शोधलेख अमृतसर का जलियांवाला हत्याकांड, विशेष व्याख्यान श्रृंखला के अंतर्गत दिनांक ५ मार्च १६१६ को भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली में पढ़े गये थे।

१६. भूपिन्दर सिंह सेहगल, ऑन डायरस् मेंटल एटिट्युड, (सं.), जलियांवाला बाग : ए सेज ऑफ सेक्रिफाइस, चंडीगढ़ साहित्य एकेडमी, चंडीगढ़, १६६५, पृ ४२.

१७. वी. चिरोल, इंडियाः ओल्ड एंड न्यू, पृ. १७८.

१८. गृह विभाग, भारत सरकार, प्रोसिडिंग, जून, १६१६, नं. २३; वी. एन. दत्त, रिफलेक्ट ऑन

जलियांवाला बाग, (सं.), जलियांवाला बाग : ए सेज ऑफ सेक्रिफाइस, चंडीगढ़ साहित्य एकेडमी, चंडीगढ़, १९९५, पृ. ७.

१९. इम्पीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल, कार्यवाही वॉल्यूम LXVIII, मार्च १९१९ - १२ सितंबर १९१९, पृ. ३०३; वॉल्यूम LVIII अप्रैल १९१९ - मार्च १९२० के प्रोसिडिंग, पृ. १४८.

२०. सतीशचन्द्र मित्तल एवं प्रशान्त गौरव, जलियांवाला नरसंहार : एक ऐतिहासिक विश्लेषण, नई दिल्ली, २०१९ , पृ. ५७-६०.

२१. मनीष कुमार, इतिहास का एक रक्तरंजित अध्याय जलियांवाला बाग, २०१५, पृ. ७१.

२२. वी. एन. दत्त, अमृतसर, पास्ट एंड प्रेजेंट, पृ. ८५-८७.

२३. सतीशचन्द्र मित्तल एवं प्रशान्त गौरव, जलियांवाला नरसंहार : एक ऐतिहासिक विश्लेषण, पृ. ७०-७३.

२४. वही, पृ. ७६-७८.

२५. अमर उजाला, चंडीगढ़ १४ अप्रैल २०१९; नटवरसिंह द्वारा लिखित पुस्तक में इसकी चर्चा की गई है; दैनिक जागरण, चंडीगढ़, १४ अप्रैल, २०१९.

२६. कुछ लोगों के अनुसार ३० अप्रैल १९१९ को सरोपा भेंट किया गया था। जोगिन्द्र सिंह की पुस्तक १९१९ का पंजाब में उल्लेखित है कि ओ. डायर की रिटायमेंट के मौके पर सुंदर सिंह मजीठिया द्वारा अपनी वफादारी दिखाने के लिए ओ. डायर की शान में पढ़े गये शब्द इस प्रकार है। मजीठिया ने लिखा कि ''यह अफसोस की बात है कि कुछ बुरे इरादे वाले लोगों की तरफ से इस धरती के अमन को तबाह करने के लिए शरारतपूर्ण कोशिशें की गई और कई स्थानों पर ऐसी जालिमाना हरकते की गई जिससे राज्य के पवित्र नाम को धब्बा लगा, पर हुजूर ने हालत पर शक्ति से काबू पाकर अच्छे तरीके से काम करके इस बुराई का खात्मा कर दिया।''

सह-आचार्य - इतिहास विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
सेक्टर ४६, चंडीगढ़

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के परिप्रेक्ष्य में गांधी

डॉ. जयप्रकाश सिंह

भारतीय इतिहास जिस दौर को 'गांधी-युग' कहता है, वह वैचारिक दृष्टि से रूमानियत और सम्मोहन का कालखंड है। उस समय कुछ संकल्पनाएं पूरी दुनिया को सम्मोहित किए हुए थीं। आम आदमी के बरक्स नेतृत्वकारी वर्ग पर इनका असर अधिक था। इसके कई कारण थे। आम आदमी के सामने यथार्थ की इतनी कठोर भूमि थी कि वह चाहकर भी विचारों की हवाई उड़ान अधिक समय के लिए नहीं भर सकता था लेकिन नेतृत्वकारी वर्ग के पास इसके लिए आवश्यक अवकाश और संसाधन उपलब्ध थे। सम्मोहन का एक अन्य कारण यह भी था कि ऐसी संकल्पनाएं आधुनिकता और वैज्ञानिकता के कलेवर में परोसी गई थी। ऐसे में उनको अपनाना, आगे बढ़ाना, खुद को आधुनिक और वैज्ञानिक साबित करने के समान था और उनका विरोध करना खुद को पुरातनपंथी बताने जैसा था। पुरातनपंथी होने का खतरा तब कोई नहीं उठाना चाहता था और न ही आज। आधुनिकता की संकल्पना को इस तरह गढ़ा गया था कि विचारों के सच का सरोकार हाशिए पर पहुंच गया और परम्परा विरोधी होना ज्यादा महत्पवूर्ण हो गया था। इसके साथ ही ये संकल्पनाएं एकदम नई थी, यथार्थ के धरातल पर इनका आकलन होना अभी बाकी था, कमियों का सामने आने की प्रक्रिया शुरू नहीं हुई थी, चुनौती देने के धरातल तैयार नहीं हुए थे, इसलिए इन संकल्पनाओं में हर जगह अच्छाई का दर्शन होना स्वाभाविक था।

गांधी–युग की ऐसी ही सर्वाधिक – सम्मोहक संकल्पना थी – साम्यवाद और उससे सम्बंधित अंतर्राष्ट्रीयतावाद का नारा। गांधी ने साम्यवाद को उसके हिंसक, अमानवीय और अप्राकृतिक प्रवृत्ति के कारण ही सिरे से नकारा। इससे भी बड़ी बात उनके द्वारा राष्ट्रवाद को अंतर्राष्ट्रीयतावाद की पूर्वशर्त के रुप में स्वीकार किया जाना था। गांधी राष्ट्रवाद को मानवता की बेहतरी के लिए एक आवश्यक उपकरण मानते थे। इसी कारण उन्होंने राष्ट्रवाद को अंतर्राष्ट्रीयतावाद की 'एंटी–थीसिस' मानने से इनकार कर दिया। वह मानते थे कि सच्चा राष्ट्रवादी ही अंतर्राष्ट्रीय चेतना के अधिक करीब पहुंच सकता है, क्योंकि राष्ट्रवाद सामूहिकता की एक भावना पैदा करती है, जिसकी अंतिम परिणति अंतर्राष्ट्रीयतावाद के रूप में होती है। गांधी १८ जून १९२५ को साप्ताहिक पत्रिका यंग इंडिया में लिखते हैं कि 'राष्ट्रवादी हुए बिना अंतर्राष्ट्रवादी होना असंभव है। अंतर्राष्ट्रीयता तभी संभव है जब राष्ट्रवाद एक सच्चाई बन जाए।'

ऐसा नहीं कहा जा सकता कि गांधी उन दृष्टिकोणों और तथ्यों से अनभिज्ञ थे, जिनके आधार पर उस समय राष्ट्रवाद की आलोचना की जा रही थी। वह मानते थे कि राष्ट्रवाद की यूरोपीय

संकल्पना ने ही उपनिवेशवाद को जन्म दिया है। वह यूरोपीय देशों के बीच चल रही गलाकाट प्रतिस्पर्धा और युद्धों का कारण भी उनके राष्ट्रवाद की संकल्पना में ढूंढते हैं लेकिन वह भारतीय राष्ट्रवाद को अलग मानते हैं। उनकी दृष्टि में भारतीय राष्ट्रवाद मात्र राजनीतिक नहीं है, वह सांस्कृतिक भी है। भारतीय राष्ट्रवाद के सांस्कृतिक संदर्भों की तरफ संकेत करते हुए वह १८ जून १९२५ को यंग इंडिया में वह लिखते हैं कि 'राष्ट्रवाद बुराई नहीं है। आधुनिक राष्ट्रों की संकीर्णता, स्वार्थपरता और एकमेवता बुराई है। सभी दूसरों की कीमत पर लाभ कमाना चाहते हैं और दूसरे का विनाश कर अपना विकास करना चाहते हैं। भारतीय राष्ट्रवाद का रास्ता इससे पृथक है। भारत स्वयं की पूर्ण अभिव्यक्ति और मानवता की सेवा के लिए स्वयं को संगठित करना चाहता है।'

वह राष्ट्रवाद को मानवता की सेवा का उपकरण ठहराते हुए यंग इडिया के उपरोक्त अंक में लिखते हैं कि ''ईश्वर ने मुझे भारतीयों के बीच जन्म दिया है। यदि मैं उनकी सेवा नहीं करता तो अपने सृष्टा के प्रति ईमानदार नहीं हो सकता। यदि मैं यह नहीं जानता कि उनकी सेवा कैसे की जा सकती है तो मुझे कभी भी इस बात का ज्ञान नहीं हो सकता कि मानवता की सेवा कैसे की जा सकती है।'' इसी बात को आगे बढ़ाते हुए वह हरिजन पत्रिका के १७ जनवरी १९३३ के अंक में लिखते हैं कि 'सार्वजनिक जीवन में ५० वर्ष व्यतीत करने के बाद मेरा इस सिद्धांत में विश्वास बढ़ गया है कि राष्ट्र की सेवा, विश्व की सेवा में कोई असंगति नहीं है।

यंग इंडिया के ५ फरवरी १९२५ के अंक में गांधी इस बात का पुनः संकेत देते हैं कि वह भारतीय राष्ट्रवाद को सांस्कृतिक राष्ट्रवाद मानते थे। वह लिखते है कि 'भारत मूलरूप से एक कर्मभूमि है भोगभूमि नहीं।' सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अपनी मान्यता पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए वह ६ अप्रैल १९२१ को यंग इंडिया में लिखते हैं कि – मेरी देशभक्ति मेरे धर्म के अधीन है। मैं भारत से वैसे ही संपृक्त हूं जैसे एक बच्चा अपनी मां के स्तनों से, क्योंकि मैं महसूस करता हूं इसने मुझे आध्यात्मिक पोषण प्रदान किया है। भारत ने मुझे वह परिवेश प्रदान किया है, जिसमें मेरी उच्चतम आकांक्षाएं अभिव्यक्त हो सकती है।'

गांधी का राष्ट्रवाद के प्रति यह दृष्टिकोण उस समय के राजनीतिक आख्यान के लिए एकदम नई परिघटना थी। गांधी ने राष्ट्रवाद को सांस्कृतिक धरातल प्रदान कर इसके उदात्त स्वरूप को लोगों के सामने रखा। वह भारतीय राष्ट्रवाद को सांस्कृतिक राष्ट्रवाद बताकर उसे राजनीतिक विमर्श के केन्द्र में खड़ा कर देते हैं। सांस्कृतिक संदर्भों में राष्ट्रवाद को परिभाषित कर गांधी न केवल एक उदात्त भारतीय पहचान गढ़ते हैं बल्कि स्वतंत्रता आंदोलन के लिए एक नया और व्यापक धरातल भी तैयार करते हैं।

उस समय जब अधिकांश नेता स्वतंत्रता, समानता और बंधुता के वैश्विक मूल्य के आधार पर भारत को स्वतंत्र किए जाने की वकालत कर रहे थे, गांधी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के उदात्त आधार पर भारत को स्वतंत्र किए जाने की मांग कर रहे थे। गांधी के अनुसार – 'मुझे अनुभूति होती है कि

भारत की भूमिका अन्य देशों से पृथक है। भारत धार्मिक श्रेष्ठता के लिए सर्वाधिक योग्य है। इस देश ने स्वैच्छिक रूप से आत्मशुद्धि की जिस प्रक्रिया को आत्मसात किया है, उसकी दुनिया में कोई अन्य मिसाल नहीं मिलती।'

राष्ट्रवाद को राजनीतिक-आख्यान बनाकर, स्वतंत्रता आंदोलन में सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को केन्द्रीय विमर्श बनाकर गांधी ने भारतीय पहचान और भावधार की जो सेवा की है, उसका आकलन होना अभी बाकी है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के परिप्रेक्ष्य में गांधी का आकलन राष्ट्रवाद और गांधी दोनों के लिए जरूरी है।(स्पीचेज एंड रायटिंग्स आफ महात्मा गांधी, पृष्ठ ४०५)

सभ्यतागत समझ, विभाजन और राष्ट्रवाद

सेमेटिक सभ्यताओं को समझने में भारतीय पिछली कई सदियों से लगातार चूक रहे हैं। हो यह रहा है कि भारतीय नेतृत्व अपनी सभ्यता के गुण-दोषों को दूसरी सभ्यताओं पर आरोपित कर कुछ सहज, मानवीय और उदात्त निष्कर्ष निकाल लेता है। इस पद्धति से निकलने वाला सबसे बड़ा निष्कर्ष यह है कि सभी पंथ समान है और सभी धर्मों में शांति एवं भाईचारे की बात कही गई है। लेकिन जब भारतीय नेतृत्व का वास्ता अन्य सभ्यताओं की वास्तविकताओं से पड़ता है तो वह किंकर्तव्यविमूढ़ और बेबस हो जाता है। इस सभ्यतागत समझ की परिधि में ही गांधी और उनके चर्चित कथन – 'विभाजन मेरे लाश पर होगा' की सही तरीके से विश्लेषित किया जा सकता है।

गांधी के इस कथन ने पूरे देश को आश्वस्त किया था कि विभाजन नहीं होगा, विभाजनकारी शक्तियों के मंसूबे सफल नहीं होंगे। दुर्भाग्य से जब विभाजन ने यथार्थ रूप में दस्तक दी तो लाचारी के साथ गांधी ने उसे स्वीकार कर लिया। खान अब्दुल गफ्फार खान ने जब रोते हुए यह कहा कि कांग्रेस ने विभाजन को स्वीकार कर पख्तूनों के साथ विश्वासघात किया है, तो प्रकारांतर से वे गांधी की ही विश्वसनीयता पर गंभीर प्रश्न खड़े कर रहे थे।

प्रश्न यह उठता है कि गांधी की चूक क्या व्यक्तिगत चूक थी, या पूरी भारतीय सभ्यता ही पांथिक समानता के सम्मोहन में अपनी जड़ें खोदने पर उतारू है। भारतीय पिछले हजार-बारह सौ सालों से यह रट लगाए हुए हैं कि सभी पंथ समानता और सह-अस्तित्व का संदेश देते है। लेकिन क्या सेमेटिक पंथों का भी यही दृष्टिकोण है?

जहां पर दिन में पांच बार इस बात की घोषणा की जाती है कि केवल उनका सच ही अंतिम सच है और उनके पैगम्बर ही सच के एकमात्र उद्घोषक हैं, वहां पर समानता और सह-अस्तित्व के लिए कितना स्थान बचता है? जिनकी विश्वदृष्टि दुनिया के पांथिक विभाजन पर निर्भर है और जहां पर अन्य मतावलम्बियों को पहले से ही जाहिल मान लिया गया हो, वहां पर शांति के लिए कितनी गुंजाईश बचती है? जहां पर जन्नत में प्रवेश की संभावना दूसरों के सफाए के समानुपात में बढ़ती हो, वहां पर मानवीय दृष्टिकोण कैसे काम कर सकता है? दुर्भाग्यवश, इन प्रश्नों से मुठभेड़ करने की हिम्मत भारतीय नेतृत्व लम्बे अरसे से नहीं जुटा पा रहा है। इसी कारण निर्णायक मौकों पर या तो हम

औंधे मुंह गिरते हैं या हमें अपने पांव पीछे खींचने पड़ते हैं।

गांधी पांथिक समानता के नारे से कुछ अधिक ही सम्मोहित थे। वह असहयोग आंदोलन में भी खिलाफत के प्रश्न को जोड़ते हैं। अधिकांश लोग यह मानते हैं कि भारत में तुष्टीकरण की राजनीति का प्रारंभ गांधी के खिलाफत आंदोलन से ही होता है। १९२० के बाद सार्वजनिक स्तर पर कई ऐसे मौके देखने को मिलते हैं, जहां गांधी मुस्लिमों को 'अतिरिक्त' देकर रिझाने की कोशिश करते हैं या हिंदुओं के वाजिब मांगों को भी साम्प्रदायिक दृष्टि से संवेदनशील ठहरा कर उनकी चर्चा करने से भी परहेज करते हैं।

संभवतः वह यह मानते थे कि मुस्लिमों को 'अतिरिक्त' देकर उन्हें भारतीय मुख्यधारा में बनाए रखा जा सकता हैं। तुष्टीकरण के जरिए एक वर्गविशेष को देश की मुख्यधारा से जोड़ने का यह प्रयोग गांधी से शुरू होकर अब तक जारी है। इस मृगमरीचिका से अब भी भारत का राजनीतिक प्रतिष्ठान निकल नहीं पाया है। इस प्रयोग के कारण कितने लोग मुख्यधारा में शामिल हुए, यह आकलन का विषय है लेकिन इसके कारण यह जरूर हुआ कि मुख्यधारा के ऊपर ही हाशिए पर सिमट जाने का खतरा मंडराने लगा। इसी मानसिकता से वशीभूत होकर कुछ लोग आज भी यह तर्क देते हैं कि यदि जिन्ना को १९३७ के बाद उचित राजनीतिक प्रतिनिधित्व दे दिया गया होता तो देश का विभाजन नहीं होता। ऐसे लोग उचित को परिभाषित करने की जहमत नहीं उठाते। उचित प्रतिनिधित्व की यह मांग का अंत क्या होता। शायद पहले वह देश का प्रधानमंत्री पद मांगते और बाद में देश ही मांगने लगते।

देश के विभाजन के साथ ही गांधी का कुछ अतिरिक्त देकर वर्ग विशेष को साथ जोड़ने का प्रयोग विफल हो गया था। देश ने इस प्रयोग की भारी कीमत चुकायी। इससे भी निराशाजनक तथ्य यह है कि इस प्रयोग की असफलता के कारण बहुत कुछ खोने के बावजूद १९४७ के बाद भी राजनीतिक प्रतिष्ठान ने कुछ अतिरिक्त देने की नीति को जारी रखा बल्कि उसे अति की सीमा तक पहुंचा दिया गया। इसकी अति शाहबानो केस में तो देखने को मिली ही थी, संप्रग शासनकाल में प्रस्तावित साम्प्रदायिक हिंसा विधेयक में इस तुष्टीकरण की नीति की अति देखी जा सकती है। इस विधेयक का लब्बोलुआब यह था कि अपराध कोई भी करे, दोषी हिंदू ही होगा।

गांधी ने अपने सार्वजनकि जीवन में कई प्रयोग किए। जिसमें कुछ सफल हुए और कुछ असफल। एक तथ्य तो एकदम स्पष्ट है वह पांथिक समानता के मोर्चे में उनकी समझ और प्रयोग दोनों बुरी तरफ असफल हुए। भारतीय राजनीतिक प्रतिष्ठान जितनी जल्दी यह मान ले कि पांथिक सह-अस्तित्व का लक्ष्य गांधी के रास्ते पर चलकर नहीं प्राप्त किया जा सकता, भारत और भारतीयता को होने वाला नुकसान उतना ही कम होगा।

यहां पर प्रश्न यह भी उठता है कि फिर पांथिक सह-अस्तित्व के संभावित रास्ते क्या होंगे? इतना तो कहा ही जा सकता है कि कोई तयशुदा रास्ता नहीं है। रास्ता पहचानने और रास्ते पर आने के लिए हमें सभी सभ्यताओं की एक निर्भ्रांत समझ विकसित करनी होगी। यदि कुछ असुविधाजनक

तथ्य हैं तो उन्हें स्वीकारना होगा, उन्हें कहना-बताना होगा। तथ्यों के कठोर धरातल पर ही रास्ते बनते-बिगड़ते हैं। हवाई किले बनाने की आदत के कारण यह देश पहले ही बहुत कुछ खो चुका है। सभ्यतागत प्रेरणाओं-प्रतिक्रियाओं को ठीक ढंग से समझने की चुनौती को हमें स्वीकार करना ही होगा। गांधी इस कार्य में अवरोधक नहीं बनेंगे, न ही उन्हें अवरोधक बनाया जाना चाहिए क्योंकि प्रयोगधर्मिता गांधी की सबसे बड़ी विशेषता है।

गांधी का सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के परिप्रेक्ष्य में आकलन करते समय हमें उनकी सीमाओं के प्रति भी जागरूक रहना होगा। वर्तमान परिस्थितियों और गांधीकाल की परिस्थितियों में बहुत अंतर है। इसलिए उनकी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की संकल्पना का आकलन भी वर्तमान अपेक्षाओं के बजाय, उस समय राष्ट्रवाद के संभव स्वरूप के संदर्भों में ही करना चाहिए।

परिणामों के आधार पर व्यक्ति अथवा विचार के आकलन की प्रवृत्ति बहुत सहज है, और प्रभावी भी। जिन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सिद्धांतों की सवारी की जाती है अथवा निर्णयों की नींव रखी जाती है, यदि उन्हें प्राप्त न किया जा सके तो सिद्धांत और निर्णयों को प्रश्नवाचक मुद्राओं का सामना करना ही पड़ता है। गांधी के सिद्धांतों और निर्णयों को परिणामों की कसौटी पर कसने पर कुछ ऐसे निष्कर्ष हाथ लगते हैं, जो उनके बारे में स्थापित मान्यताओं को झकझोर कर रख देते हैं।

गांधी पूरे जीवन अहिंसा के सिद्धांत को लेकर बहुत आग्रही रहे। वह अहिंसा के जरिए शांति, सौहार्द और भाईचारे का लक्ष्य प्राप्त करना चाहते थे। क्या अहिंसा के उनके उपकरण ने इन लक्ष्यों को प्राप्त करने में उनकी कोई मदद की? अथवा उनका यह आग्रह एकपक्षीय साबित हुआ। क्या प्रतिक्रिया के अभाव की स्थिति ने क्रूरताओं को नए सिरे से परवान चढ़ने के अवसर प्रदान नहीं किए? गांधीकालीन भारत का अवलोकन करें तो इन संभावनाओं को सिरे से खारिज करना मुश्किल हो जाएगा। परिणाम के पैमाने पर गांधी की अहिंसा को प्रश्नों का सामना करने से बचाया नहीं जा सकता।

इसी तरह विभाजन को स्वीकार करना गांधी का बहुत अप्रत्याशित निर्णय था। विभाजन से किन लक्ष्यों की प्राप्ति हुई, इस पर बहस की बहुत गुंजाईश है। विभाजन के पक्ष में सबसे बड़ा तर्क यह दिया जाता है कि यह संभावित व्यापक पैमाने पर होने वाले साम्प्रदायिक दंगों को रोकने के लिए किया गया था। लेकिन क्या विभाजन के कारण साम्प्रदायिक दंगे रुक गए। आंकड़ों की गवाही तो इसके उलट ही है। विभाजन के कारण २० लाख लोग मारे गए, करोड़ों लोगों को विस्थापन का दंश झेलना पड़ा। किस साम्प्रदायिक दंगे में इतने बड़े पैमाने पर जनसंहार होता है। एक अन्य तर्क यह दिया जाता है कि हिन्दू-मुस्लिम एक साथ नहीं रह सकते, इसलिए विभाजन जरूरी था, लेकिन इसके लिए तो जनसंख्या का पूर्ण पांथिक स्थानांतरण आवश्यक था, जो हुआ नहीं। कुल मिलाकर विभाजन का समाधान हत्या के डर से आत्महत्या करने जैसा था।

गांधी जिस सिद्धांत के बारे में सबसे अधिक आग्रह रखते थे और उनके जिस निर्णय को सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है, वे परिणाम के पैमाने पर बुरी तरह विफल हुए। कुछ मायनों में तो

उनके सिद्धांतों और निर्णयों ने विपरीत परिणाम दिए। इसलिए परिणाम को आधार मानकर किए जाने वाले आकलन तो गांधी को वायवीय आदर्शवादी ही साबित करते हैं। वह अपने आदर्शों के सम्मोहन में जी रहे थे। उनके आदर्शो में यथार्थ का निवेश शून्य के बराबर था और यथार्थ के धरातल के बिना आदर्श की यात्राओं का औंधेमुंह गिरना तय होता है। गांधी के साथ भी यही हुआ।

प्रश्न उठता है कि गांधी वायवीय आदर्श के सम्मोहन का शिकार क्यों हो गए। उत्तर मानव-प्रकृति सम्बंधी उनकी मान्यताओं में ढूंढा जा सकता है। गांधी मानव को मूलरूप से अच्छा व्यक्ति मानते थे, जो हमेशा अच्छा सोचता है और अच्छा ही करता है। यह हॉब्स जैसे पश्चिमी राजनीतिक विचारकों के ठीक विपरीत थे। हॉब्स के अनुसार आदमी स्वभाव से ही बुरा होता है, बुरा ही सोचता है और बुरा ही करता है। यह दोनों अतियां है।

भारतीय चिंतन तो मानव-प्रकृति को त्रिगुणात्मक मानता है – सत, रज, तम। प्रत्येक व्यक्ति में यह प्रवृत्तियां रहती है। प्रत्येक व्यक्ति में किसी एक प्रवृत्ति की प्रधानता होती है, अन्य प्रवृत्तियां देश-काल-परिस्थिति के अनुसार अभिव्यक्त होती हैं। इसलिए एक ही व्यक्ति की अलग-अलग परिस्थिति में अलग-अलग मनःस्थिति रहती है। भारतीय चिंतन मानता है कि व्यक्ति अच्छाई या बुराई की स्थिर इकाई नहीं है। इसलिए मानव अथवा मानव-समुदाय के बारे में एक स्थिर अवधारणा बनाना भ्रामक है। दुर्भाग्य यह है कि भारतीयता के प्रति अपने आग्रहों के बावजूद गांधी मानव-प्रकृति को उसकी सम्पूर्ण जटिलताओं के साथ स्वीकार नहीं कर सके। उनके सैद्धांतिकी और निर्णयों के विफल होने का कारण यही है।

दुर्भाग्य यह रहा है कि देश को गांधी की सफलताओं-असफलताओं का खुले मन से विवेचन-विश्लेषण करने का मौका नहीं मिला। विभाजन के बाद गांधी की असफलताएं खुली किताब की तरह लोगों के सामने थीं। उस समय सबसे अधिक असंतोष और शिकायतें भीं गांधी को लेकर थीं। गांधी के वायवीय आदर्शो की सीमाएं हवाओं में तैर रही थीं। इसी बीच गोडसे की तरफ से एक ऐसा कदम उठता है जिसके कारण गांधी के बारे में मुक्तमन से चर्चा होना असंभव हो जाता है।

न्यायालय में गोडसे को लेकर जो बयान है, वह पढ़ने जैसा है, और उनकी मान्यताओं को समझने में सहायक भी। उस पर भी खुले मन से चर्चा होनी चाहिए। लेकिन यह प्रश्न तो बना ही रहेगा कि उनकी भावुक प्रतिक्रिया के कारण क्या उस राष्ट्र-धर्म-संस्कृति की बेहतरी में कोई सहायता मिली, जिसके लिए वह अपना सर्वस्व अर्पण करने की बात करते हैं।

परिणामों के आधार पर गांधी के आकलन से उनकी एक अलग तस्वीर बनती है। यदि गोडसे का भी आकलन इसी आधार पर करें तो यह स्पष्ट हो सकेगा कि उन्होंने इस सभ्यता-संस्कृति को कितनी लाभ-हानि पहुंचाई। गोडसे के मन में चाहे जैसी भावनाएं रही हों, लेकिन उनके एक भावुक कदम ने इस देश की संस्कृति और उसकी संवाहक शक्तियों के सामने एक जटिल स्थिति पैदा कर दी। विरोधियों को ऐसे आख्यान रचने के मौके दिए जो देश-धर्म के खिलाफ थे। नैतिक धरातल

पर हम अन्य के बराबर आ गए। सफाई देने की एक ऐसी मुद्रा ओढ़नी पड़ी, जो अब भी हमारे सिर पर भार के रूप में सवार है।

वायवीय आदर्शो और भावुक प्रतिक्रियाओं के द्वंद्व से यह देश आज भी संतप्त है। एकदम उदात्त नारे या निकृष्ट फौरी प्रतिक्रिया हमारा स्वभाव बन गई हैं। इन दोनों अतियों के बीच सच कहीं कोने में सिसक रहा होता है, सच को सामने लाने वाली साधना दम तोड़ जाती है। दीर्घकालीन रणनीति और संयम की बात पीछे छूट जाती है, वाग्वीर जीभ से तलवारें भाजकर ही युद्ध का निपटारा कर देते हैं। देश को इस द्वंद्व से बाहर निकालने की जरूरत है। सत्य को चरम मूल्य के रूप में स्वीकार करने की आवश्यकता तो है ही, जरूरत उसे प्रतिठित करने की साधना को एकरेखीय और एकवेगीय मानने के भ्रम से बाहर निकलने की भी है।

वायवीय आदर्शों और भावुक प्रतिक्रियाओं के बीच पसरे सत्य को समझना गांधी और उनके सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की सीमाओं और सामर्थ्य को समझने के लिए आवश्यक है।

सहायक आचार्य - पत्रकारिता एवं जनसंचार
हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय
धर्मशाला, जिला कांगड़ा (हि.प्र.)

१८५७ की महान क्रान्ति में कसौली का योगदान

डॉ. ओम प्रकाश शर्मा

ब्रिटिश सरकार ने पहाड़ी रियासतों में अपनी जड़ें मजबूत करने व शासन को सुचारू रूप से चलाने के उद्देश्य से कसौली, जतोग, सुबाथू और डगशाई में सैनिक छावनियों को स्थापित किया था। इन छावनियों में तैनात भारतीय सैनिकों को बड़ा धक्का उस समय लगा जब बंगाल के बैरकपुर में ८ अप्रैल, १८५७ को मंगल पांडे को फांसी की सजा सुनाई गई। वस्तुतः ब्रिटिश सरकार ने 'एनफील्ड राइफल्स' में प्रयोग किए जाने वाले कारतूस में गाय व सुअर की चर्बी निर्मित तरल द्रव उपयोग में लाने का निर्णय लिया था। मंगल पाण्डे ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध हथियार उठाने का संकल्प लिया। २९ मार्च, १८५७ को मंगल पाण्डे ने पहली गोली मेजर ह्यूसन पर चलाई। यहीं से १८५७ की इस महान क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ।

११ मई, १८५७ को मेरठ में प्रारम्भ हुई सशस्त्र क्रान्ति की सूचना गुप्त रूप से हिमाचल की सैनिक छावनियों में भी पहुंच चुकी थी। ब्रिटिश सेना का कमांण्डर-इन-चीफ जनरल जॉन एनसन शिमला में था। जनरल एनसन ने विकट परिस्थिति को भांपते हुए कसौली, जतोग, सुबाथू व डगशाई के सैनिकों को अम्बाला कूच करने के आदेश दिए। अम्बाला में उन दिनों ब्रिटिश सेना का मुख्यालय था। हिमाचल की इन छावनियों में तैनात देशी सैनिकों ने अम्बाला कूच करने से इन्कार कर दिया। यहां पर तैनात सैनिक मंगल पाण्डे की फांसी व गाय-सूअर की चर्बी के द्रव से निर्मित कारतूसों के प्रयोग से आक्रोश में थे।

१२ मई, १८५७ को हिन्दुस्तान - तिब्बत रोड के सुपरिंटेंडेण्ट कैप्टन डेविड ब्रिग्ज को कसौली, डगशाई, सुबाथू और जतोग में तैनात सैनिकों को पुनः अम्बाला की ओर कूच करवाने के आदेश मिले। कसौली में तैनात नसीरी सेना ने अम्बाला जाने से इन्कार कर दिया। कसौली में ब्रिटिश सेना के मुकाबले देशी सेना बहुत कम थी। फिर भी देशी सेना ने १६ मई, १८५७ को आन्दोलन कर दिया। यहां पर तैनात देशी सैनिकों ने ब्रिटिश सेना पर धावा बोल दिया। अंग्रेज सैनिक कैप्टन ब्लैकॉल के साथ छावनी से भाग निकले। देशी सैनिकों ने सरकारी खजाने पर कब्जा कर लिया। खजाने का धन इकट्ठा कर देशी सेना के सैनिक जतोग की ओर बढ़े। उस समय जतोग और कसौली छावनियों का नेतृत्व सूबेदार भीम सिंह कर रहे थे। तत्कालीन कसौली के सहायक कमिश्नर पी. मैक्सवैल ने लिखा है – ''यह बड़े खेद का विषय है कि मुट्ठीभर क्रान्तिकारियों ने चार गुणा से भी अधिक अंग्रेजी सैनिकों के सामने आन्दोलन के आरम्भ में ही ब्रिटिश सरकार को उसके अपने ही गढ़ में त्रस्त कर दिया और कोष को भी लूटा।'' उल्लेखनीय है कि मात्र ४५ क्रान्तिकारियों ने २०० से भी

अधिक ब्रिटिश सैनिकों के विरुद्ध हथियार उठा कर अदम्य साहस का परिचय दिया था।

कसौली की क्रान्तिकारी देशी सेना ने सूबेदार भीम सिंह के नेतृत्व में जतोग की ओर कूच किया। इस टुकड़ी ने मार्ग में हरिपुर नाम स्थान पर ब्रिटिश सेना के कमाण्डर-इन-चीफ जनरल जॉर्ज एनसन के टैंटों में आग लगा दी। वहां अस्त्र-शस्त्र व अन्य सामान भी जब्त किया गया। सैरी (सायरी) नामक स्थान पर दो भगोड़े ब्रिटिश अफसरों एवं अन्य फिरंगियों को डराया धमकाया। इसके अतिरिक्त सरकारी डाकिये को भी पकड़कर उससे सारी डाक छीन ली। मार्ग में क्रान्तिकारी स्थानीय लोगों से अंग्रेजों की सहायता न करने की अपील कर रहे थे और कह रहे थे – अब अंग्रेजों का राज समाप्त हो गया है।

कसौली से नसीरी सेना के जतोग की ओर कूच करने के पश्चात् स्थानीय पुलिस गार्ड ने क्रान्ति की बागडोर अपने हाथों में ले ली। छावनी थाना में दारोगा बुद्धि सिंह यहां क्रान्तिकारियों के नेता बन गए। उनके नेतृत्व में पुलिस क्रान्तिकारियों ने एसिस्टेंट कमिश्नर टेलर और कैप्टन ब्लैकॉल के आदेशों का उल्लंघन किया। इन क्रान्तिकारियों ने फिरंगियों को ललकारा। पुलिस बल के सिपाही भी नसीरी सेना के क्रान्तिकारियों का साथ देने के लिए जतोग की ओर बढ़ चले। कसौली में तैनात ब्रिटिश सैनिकों ने इन क्रान्तिकारियों का पीछा किया। कुछ क्रान्तिकारी सिपाही पकड़े गए और दरोगा बुद्धि सिंह ने विपरीत परिस्थितियां देखकर पिस्तौल से अपने आप को गोली मार दी। कसौली क्रान्ति का पहला वीर क्रान्तिकारी दारोगा बुद्धि सिंह भारत माँ की बलीवेदी पर शहीद हो गया।

कसौली में क्रान्तिकारी दारोगा बुद्धिसिंह के शहीद होने के साथ ही अन्य क्रान्तिकारी सैनिकों को पकड़कर जेल में डाल दिया गया और उन्हें घोर यातनाएं दी गई। नसीरी सेना और कसौली की स्थानीय पुलिस गारद द्वारा ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध हथियार उठाने से वहां अंग्रेजों में जबरदस्त दहशत थी। स्थानीय क्रान्तिकारियों के हमले की आशंका से सनावर लॉरेंस आश्रम के ३८० बच्चे व अंग्रेज शरणार्थी डर के मारे थर-थर कांपते रहे। १७ मई, १८५७ को रविवार के दिन आश्रम के शरणार्थी व अन्य फिरंगियों को कसौली छावनी की बैरकों में सुरक्षा दी गई। १८ मई, १८५७ को कैप्टन मोफ्ट ७५ पैदल बटालियन के एक सौ सिपाहियों को लेकर कसौली पहुंचा। डगशाई में कैप्टन ब्रुक और सुबाथू में कर्नल कांगरीव अपने-अपने सैनिक दस्ते लेकर कसौली पहुंचे। इस प्रकार कसौली छावनी को सुरक्षा मिली।

१८५७ के इस प्रथम संघर्ष को कसौली, डगशाई, सुबाथू और जतोग में उस समय भारी धक्का लगा जब शिमला पहाड़ी रियासतों के देशी शासकों ने क्रान्तिकारियों का साथ न देकर अंग्रेज भक्ति दिखाई। १८ छोटी-ठकुराइयों में जुब्बल, बलसन, कुमारसेन, खनेटी व सांगरी आदि देशी शासकों ने ब्रिटिश शासन का साथ दिया। बड़ी ठकुराईयों में क्योंथल, बाघल, कोटी, धामी आदि रियासतों के शासकों ने अंग्रेजों को संरक्षण दिया और रियासती सेना के क्रान्तिकारियों को नियन्त्रित करने के लिए अपने दस्ते भी भेजे। इस प्रकार कसौली से फूटी क्रान्ति की प्रथम चिंगारी मधम पड़ने

लगी। स्थानीय जनता यद्यपि क्रान्तिकारियों के साथ थी परन्तु देशी शासकों और ब्रिटिश सेना के समक्ष वे ज्यादा समय तक विरोध न कर सके।

२४ मई, १८५७ को जतोग की क्रान्तिकारी नसीरी सेना ने अपने नेता सूबेदार भीम सिंह के नेतृत्व में एक बैठक बुलाई। पॉलिटिकल एजेंट विलियम हेय और मेजर बगोट द्वारा नसीरी सेना को शान्त करने के लिए दिए गए आश्वासनों पर चर्चा हुई। अधिकतर सैनिक पूरे देश में घट रही घटनाओं से उत्तेजित थे। वस्तुतः पहाड़ों और मैदानों में गतिविधियां समान रूप से चल रही थी। गुप्त संगठन सक्रिय थे। सुबाथू के परेड ग्रांउड के पास एक मन्दिर में पुजारी रामप्रसाद वैरागी गुप्त संगठन का नेतृत्व कर रहे थे। कमल और रोटी गुप्त संगठन की सूचना के प्रतीक चिन्ह थे। इन प्रतीक चिन्हों के माध्यम से वह पत्र व्यवहार कर रहे थे। पत्र व्यवहार के माध्यम से पहाड़ों से सूचनाएं अन्य स्थानों को पहुंच रही थीं। रामप्रसाद वैरागी ने महाराजा पटियाला को भी कई पत्र लिखे थे जिसमें अंग्रेजों का साथ न देने की अपील की गई थी। दुर्भाग्यवश पत्रों के पकड़े जाने और गुप्तचरों के भेद खुलने से गुप्तचर क्रान्तिकारी नेता रामप्रसाद वैरागी पकड़ा गया। उन्हें अम्बाला ले जाया गया व वहां पर फांसी पर लटका दिया गया। जतोग में भी नसीरी सेना के नायब सूबेदार भीम सिंह को भी घोर निराशा हुई। उसे भी फांसी की सजा सुनाई गई। वह किसी प्रकार अंग्रेजों के चंगुल से भागने में सफल हुआ था। वस्तुतः कसौली गारद के एक सिपाही ने देशद्रोह किया था और वह सरकारी गवाह बन बैठा था। सूबेदार भीम सिंह रामपुर चला गया। घोर निराशा में इस महान क्रान्तिकारी ने वहां आत्महत्या कर ली।

१८५७ की कसौली की महान क्रान्ति भी अन्य स्थलों की तरह ही असफल हो गई। स्थानीय शासक व महाराजा पटियाला की सेना ने यदि इस महान क्रान्ति में अंग्रेजों का साथ न दिया होता तो परिणाम कुछ और होते। भले ही अंग्रेजों ने देशी शासकों के सहयोग से इस महान क्रान्ति को कुचल दिया परन्तु कुचले गए महान क्रान्तिकारी भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन की नींव के स्तम्भ बन गए। कसौली के महान क्रान्तिकारी भी उनमें परिगणित हैं।

संदर्भ :

१. पंजाब सरकार, गजेटियर्ज ऑफ शिमला हिल स्टेट्स, लाहौर, १९३४-३५।

२. पंजाब सरकार, दि म्यूटिनी रिकॉर्ड्स - १८५७, खण्ड - ७, पार्ट - १, गवर्नमेंट प्रैस, लाहौर १९११।

३. हिमाचल प्रदेश में स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास, भाषा एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश, शिमला - ९, २०१३।

सह-आचार्य - संस्कृत विभाग,
राजकीय महाविद्यालय कोटशेरा,
चौड़ा मैदान, जिला - शिमला (हि.प्र.)

श्रीमद्भागवत पुराण में काल विवेचन

डॉ. ओम दत्त सरोच

श्रीमद्भागवत माहात्म्य में विस्तार से इस पुराण की महिमा, उपादेयता व महत्त्व बताया गया है। इस पुराण में परमात्मा (श्रीकृष्ण) के प्रति भक्ति व श्रद्धा का विस्तार से वर्णन है। इसके अतिरिक्त प्राचीन इतिहास, संस्कृति, ज्ञान धर्म व दर्शन का भी यह पुराण भंडार है। इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण विषय काल-तत्व का विवेचन भी इस पुराण में बड़ी सूक्ष्मता एवं वैज्ञानिकता से किया जाता है।

काल शब्द का अर्थ सामान्यतः समय या अवधि किया जाता है। एक दूसरा अर्थ मृत्यु या समाप्ति भी होता है। यह सम्पूर्ण जगत काल के अधीन है। यहां प्रत्येक तत्व, पदार्थ व प्राणी की काल-सीमा निर्धारित है। काल-सीमा पूरी होने पर वह समाप्त हो जाता है। जो काल से परे है, वह कालातीत, परम तत्व ही परमात्मा, परमेश्वर कहलाता है। जगत की तीन प्रधान स्थितियां है – उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय। उत्पत्ति से स्थिति काल तक काल की प्रवृत्ति होती है, और प्रलय में काल भी परम तत्व परमेश्वर में विलीन हो जाता है। काल विष्णु (परमेश्वर) का प्रवृत्ति-रूप है। परमेश्वर के दो रूप प्रधान और पुरुष हुए। परमेश्वर का जो रूप सृष्टि और प्रलय को अलग करता है वही काल कहा गया है –

विष्णोः स्वरूपात् परतो हि ते द्वे रूपे प्रधानं पुरुषश्च द्विज।
तस्यैव तेऽन्येन धृते वियुक्ते रूपान्तरं तद्द्विज कालसंज्ञम्। (विष्णु पु. १-२-२४)

भागवत पुराण में भी विषयों के रूपान्तर को काल कहा गया है। काल निर्विशेष अनादि और अनन्त है। काल को निमित्त बना कर परमेश्वर सृष्टि कार्य में प्रवृत्त होते हैं –

गुणव्यतिकराकारो निर्विशेषोऽप्रतिष्ठितः।
पुरुषस्तदुपादानमात्मानं लीलयाऽसृजत्।।
विश्वं वै ब्रह्मतन्मात्रं संस्थितं विष्णुमायया।
ईश्वरेण परिच्छिन्नं कालेनाव्यक्तमूर्तिना।। भा. पु. ३-१०-११,१२

विराट पुरुष (परमेश्वर) की कर्मप्रवृत्ति अर्थात् सृष्टि रचना आदि कार्य ही काल का स्वरूप है – **''गतिर्वयः कर्मगुणप्रवाहः।''** सृष्टि रचना के कार्य में काल-तत्त्व की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। परमेश्वर की माया शक्ति का रूप तीन गुण सत्व, रजः और तमोगुण है। काल शक्ति की प्रेरणा से ही इन तीन गुणों में क्षोभ उत्पन्न होता है, जिसके कारण महत् (चित्) अहंकार (बुद्धि) पंचतत्व, तन्मात्रायें, इन्द्रियादि उत्पन्न होती हैं व सृष्टि का विकास होता है –

कालवृत्या तु मायायां गुणमय्यामधोक्षजः।

पुरुषेणात्मभूतेन वीर्यमाधत्त वीर्यवान् ।।
ततोऽभवन्महत्तत्वमव्यक्तात् कालचोदितात्
विज्ञानात्माऽऽत्मदेहस्थं व्यञ्जस्तमो नुदः ।। भा.पु. ३-५-२६,२७

प्रलय काल में ईश्वर की समस्त शक्तियां सुप्तावस्था में रहती है, केवल कालशक्ति ही जागृत अवस्था में होती है। यह काल शक्ति ही ईश्वर को सृष्टि रचना के लिए प्रेरित करती है –

''कालाख्ययाऽऽसादितकर्मतन्त्रो ।
लोकानपीतान्ददृशे स्वदेहे ।'' भा.पु. ३-८-१२

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट होता है कि काल-तत्त्व परमेश्वर की सृजनशक्ति है। काल परमेश्वर का ही रूप है। काल सृष्टि और प्रलय का कारण भी है, क्योंकि काल की ही प्रेरणा से परमेश्वर सृष्टि रचना व लय के लिए प्रवृत होते हैं। जगत की तीनों स्थितियों उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कारण काल ही है। इनकी प्रवृति काल के अधीन है। काल सब का अन्त है, परन्तु स्वयं अनादि, अनन्त और सर्वव्यापक है।

यह सृष्टि परमाणुओं से बनी है। यह पौराणिक मान्यता भी है और विज्ञान का सिद्धान्त भी। जगत् का सूक्ष्मतम तत्त्व परमाणु है। परमाणु ईश्वरतत्त्व ही है जिसमें सृष्टि का विकास होता है। अतः ईश्वरत्व ही है जिससे सृष्टि का विकास होता है। अतः ईश्वर सूक्ष्म भी है और विराट (जगतरूप) भी। काल परमाणु में भी व्याप्त है और विराट रूप जगत में भी। इसलिए काल को भी सूक्ष्म और विराट (महत्तम) कहा गया है –

'स कालः परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम् ।
सतोऽविशेषभुग्यस्तु स कालः परमो महान् ।। भा. पु. ३-११-४

इसके अतिरिक्त कहा गया है –

एवं कालोऽप्यनुमितः सौक्ष्म्ये स्थौल्ये च सत्तम् । भा.पु. ३-११-३

काल अनन्त है, अनादि है। सृष्टि सूक्ष्म परमाणुओं से बनी है, अतः काल की सूक्ष्मतम इकाई परमाणु पर ही आधारित है। भागवत पुराण के तृतीय स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय में काल-विभाग का विस्तार से वर्णन है। इसके अनुसार काल की सूक्ष्मतम से लेकर वृहत्तम इकाईयों का विवरण इस प्रकार से है–

अणुर्द्वौ परमाणू स्यात् त्रसरेणुस्त्रयः स्मृतः ।
जालार्करश्म्यवगतः खमेवानुपतन्नगात् ।। भा.पु. ३-११-५

दो परमाणुओं के मेल से एक अणु बनता है, तथा तीन अणुओं से एक त्रसरेणु होता है। त्रसरेणु का आकार किसी झरोखे से आती हुई सूर्य की रोशनी में उड़ते हुए कण के बराबर होता है। तीन त्रसरेणुओं को पार करने में सूर्य की किरण को जितना समय लगता है, वह समय त्रुटि कहलाता है। इस प्रकार 'त्रुटि' सूक्ष्मतम समय की इकाई है जो कि परमाणुओं पर आधारित है। भागवत पुराण में वर्णित (३-११) काल विभाग को इस प्रकार समझा जा सकता है –

दो परमाणु	–	एक अणु	तीन अणु	– एक त्रसरेणु
तीन त्रसरेणु	–	एक त्रुटि	१०० त्रुटि	– एक बेध

तीन बेध — एक लव
तीन लव — एक निमेष (पलक झपकने जितना समय)
तीन निमेष — एक क्षण पांच क्षण — एक काष्ठा
पन्द्रह काष्ठा — एक लघु पन्द्रह लघु — एक नडिका
दो नडिका — एक मूहूर्त छः मूहूर्त — एक प्रहर (याम)
आठ प्रहर — एक दिन रात (अहोरात्र) चार प्रहर दिन
और चार प्रहर रात
पन्द्रह अहोरात्र (रातदिन) — एक पक्ष
दो पक्ष — एक मास - एक पितृ-दिन
दो मास — एक ऋतु
छः मास — एक अयन
दो अयन (१२ मास) उत्तरायण एवं दक्षिणायन - एक वर्ष - एक देवताओं का दिन
सौ वर्ष — मनुष्य की परमायु

यह काल-विभाग मानवीय काल विभाग है। यह मनुष्यों के व्यवहार के लिये है। इसके उपरान्त दिव्य अर्थात् देवताओं से सम्बन्धित काल-मानों का विवरण भागवत पुराण में है, दिव्य कालमान को समझने से पहले युग और मन्वतरादि को जानना आवश्यक है। कृत युग (सत युग), त्रेता युग, द्वापर युग और कलियुग ये चार युग हैं। इन चार युगों का कालमान एक महायुग कहलाता है, एक महायुग एक हजार दिव्य वर्षों के बराबर है। इस ब्रह्माण्ड में चौदह लोकों की स्थिति बताई गई है। भू (पृथ्वी लोक) भुवः (अन्तरिक्ष लोक) स्वः (स्वर्ग) ये तीन लोक त्रिलोकी कहलाते हैं। इन तीक लोकों के आगे स्थित तपःलोक जन लोक महःलोक आदि में कालमान भिन्न है और उन्हें ब्रह्म अर्थात् ब्रह्मा से सम्बन्धित ब्रह्म दिन, वर्ष आदि कहा जाता है। दिव्य एवं ब्रह्मा से सम्बन्धित कालमान इस प्रकार से है —

एक मानव वर्ष — एक दिव्य दिन
३६५ दिव्य दिन — एक दिव्य वर्ष - १३३२२५ मानव दिन
बारह हजार दिव्य वर्ष — एक महायुग (चतुर्युग)
— सतयुग —१७२८००० वर्ष
— त्रेतायुग — १२९६००० वर्ष
— द्वापर युग — ८६४००० वर्ष
— कलियुग — ४३२००० वर्ष
महायुग (चतुर्युग) — ४३२००० वर्ष
७१ महायुग के काल से कुछ अधिक(७१.४२९ महायुग) — एक मन्वन्तर
चौदह मन्वन्तर (१००० महायुग) — एक कल्प (जो ब्रह्मा का एक दिन होता है)

ब्रह्मा की आयु सौ ब्रह्म वर्ष है। ब्रह्मा की सौ वर्ष की आयु को 'पर' कहा जाता है, जैसा कि विष्णु-पुराण में उल्लेख है –

निजेन तस्य मानेन आयुवर्षशतं स्मृतम् ।
तत्पराख्यं तदर्धं च परार्द्धमभिधीयते ।। (वि.पु. १-३-४, ५)

ब्रह्मा की आयु के आधे भाग को 'परार्द्ध' कहा जाता है। इस समय ब्रह्मा की आयु का पहला भाग अर्थात् प्रथम परार्द्ध बीत चुका है तथा दूसरा परार्द्ध चल रहा है –

यदर्धमायुषस्तस्य परार्द्धमभिधीयते ।
पूर्वः परार्धोऽपक्रान्तः ह्यपरोऽद्य प्रवर्तते । भा.पु. ३-११ - ३३

कल्प ब्रह्मा का दिन अर्थात् एक सृष्टि का काल है। ब्रह्मा की आयु (पर) के पिछले भाग परार्द्ध का आरम्भ ब्रह्म नामक कल्प से हुआ था। क्योंकि उसी कल्प के आरम्भ से ब्रह्मा जी का प्रादुर्भाव हुआ था।

पूर्वस्यादौ परार्धस्य ब्राह्मो नाम महानभूत ।
कल्पो यत्राभवद्ब्रह्मा शब्द ब्रह्मेति यं विदुः । भा. पु. ३-११-३४

वर्तमान में ब्रह्मा की आयु का द्वितीय भाग अर्थात् द्वितीय परार्द्ध चल रहा है। इस परार्द्ध का प्रथमकल्प वराह-कल्प के नाम से प्रचलित है। इस कल्प के आरम्भ में भगवान ने वराह के रूप में अवतार लेकर पृथ्वी व वेदों का उद्धार किया था, इसीलिए यह वराह कल्प के नाम से प्रचलित हआ –

अयं तु कथितः कल्पो द्वितीयास्यापि भारत ।
वाराह इति विख्यातो यत्रासीत्सूकरो हरिः । भा.पु. ३-११- ३६

अन्य पुराणों की तरह भागवत पुराण में भी काल तत्त्व का विस्तार से विवेचन है। काल की सूक्ष्मतम ईकाई परमाणु है। परमाणु से ही जगत की रचना एवं विस्तार होता है तथा परमाणु से ही काल का विस्तार है। परमाणु परमात्मा रूप है, अतः काल भी परमेश्वर रूप है। जिस प्रकार सम्पूर्ण जगत् परमेश्वर से प्रकट हो कर प्रलयकाल में उसी में विलीन हो जाता है, उसी प्रकार काल शक्ति से इस का प्रादुर्भाव होकर यह काल के गर्भ में समा जाता है। परमेश्वर और काल अनादि, अनन्त व सर्वव्यापक है। परमाणु रूप परमेश्वर का विस्तार विराट पुरुष रूप ब्रह्माण्ड के रूप में है तो काल का विस्तार भी परमाणु से लेकर 'पर' (ब्रह्मा की पूर्णायु) तक है। त्रुटि (तीन त्रसरेणु- नौ परमाणु) काल की सूक्ष्मतम ईकाई और पर (ब्रह्मा की पूर्ण आयु) ब्रह्म ईकाई तथा कल्प एक सृष्टि की सबसे बड़ी काल की ईकाई है। काल वह तत्व है जो प्रलय काल में भी जाग्रत रहता है। इसे किसी सीमा में नहीं बांधा जा सकता है। परन्तु समस्त जगत काल के अधीन है।

सेवा-निवृत - प्राचार्य, संस्कृत महाविद्यालय,
चकमोह, जिला हमीरपुर (हि.प्र.)

एक सतत् संघर्षशील योद्धा - पण्डित जयकृष्ण शर्मा

भूमिदत्त शर्मा

स्व. पण्डित जयकृष्ण शर्मा

पण्डित जयकृष्ण शर्मा जी का जन्म हिमाचल प्रदेश के ऊना जिला की हरोली तहसील के दुलहेड़ा गांव में अपने ननिहाल में कलियुगाब्द ५०४४, विक्रमी संवत् १९९९ (११ फरवरी, १९४३) को हुआ था। वे एक उत्कृष्ट स्वयंसेवक, नेता तथा सामाजिक समस्या के समाधान कारक कार्यकर्त्ता थे। शोध संस्थान नेरी के संस्थापक एवं मार्गदर्शक ठाकुर रामसिंह जी के साथ अत्यन्त निकट का सम्बन्ध रहा। चाहे वह पंजाब में राष्ट्रीय सुरक्षा समिति के संयोजक का दायित्व रहा हो, चाहे इतिहास संकलन योजना में लेखक प्रमुख का। वे ठाकुर रामसिंह के मार्गदर्शन में चलते थे। सन् २००८ में एक कार दुर्घटना में उन्हें बहुत चोट आई थी जिसके उपरान्त उनकी गतिविधियों में थोड़ी रुकावट आ गई थी। शोध संस्थान नेरी के संस्थापक सदस्य और निदेशक मण्डल के सदस्य सन् २०१८ तक रहे। १० सितम्बर, २०१९ को जालन्धर अस्पताल में उन्होंने अन्तिम सांस ली। शोध संस्थान नेरी दिवंगत् आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना करता है और परिवार के सदस्यों को सम्बल दे कि जिससे उनके पदचिन्हों पर चलकर समाज कार्य के लिए अपनी ऊर्जा लगाते रहें। यहां मैं उनका एक संस्मरण देना अपेक्षित समझता हूं जो उन्होंने ठाकुर रामसिंह स्मृति श्रद्धाञ्जलि विशेषांक के लिए संयुक्त अंक अक्तूबर २०१० जनवरी २०११ के लिए दिया था। जिसे यहां यथावत् उद्धृत किया जा रहा है –

इसका रिवार्ड जानते हो?

बात सन् १९८६ बैशाखी के दौरान की है। पंजाब में आतंकवाद शिखर पर था। उस दिन मैं अमृतसर में था और मुझे निजी कार्य से दिल्ली जाना था। श्री रामेश्वर जी का फोन आया कि राकेश जी आप से मिलना चाहते हैं। मैं राकेश जी से मिलने के लिए चला गया। हमारी बात चलते-चलते रिक्शा में ही हुई। राकेश जी ने बताया कि माननीय ठाकुर रामसिंह जी और श्री विश्वनाथ जी दोनों आप से मिलना चाहते हैं। मैंने उन्हें दिल्ली जाने की बात बताई। उन्होंने कहा कि वे दिल्ली में ही हैं और आप उनसे दिल्ली में ही मिल लें। दिल्ली में, मैं पहले अपने ससुराल गया और दूसरे दिन प्रातः झण्डेवाला कार्यालय चला गया। जाते ही मैं माननीय विश्वनाथ जी से मिला। उन्होंने कहा पहले

ठाकुर जी से मिल लो, उसके बाद हम सारी बात बैठकर करेंगे। ठाकुर जी के साथ मैं उनके कमरे में बैठ गया। ठाकुर जी ने पंजाब की दुःखद स्थिति का जिस प्रकार वर्णन किया वह मुझे आज भी नहीं भूलता है। उन्होंने कहा कि पंजाब की लड़ाई हिन्दू-सिक्ख की नहीं है बल्कि यह तो पाकिस्तान द्वारा छेड़ा गया गुरिल्ला युद्ध है। पंजाब में हिन्दू सिक्खों में नफरत पैदा करने की योजना पाकिस्तान कर रहा है। इसको सफल नहीं होने देना है। पंजाबियों में जो भय का वातावरण बना है, उसको दूर करने की आवश्यकता है ताकि लोग पंजाब से पलायन न कर सकें। उन्होंने मुझे कहा कि सब तरफ नजर दौड़ाने पर हमारा ध्यान आपकी तरफ गया है। क्या यह काम करने के लिए आप तैयार हैं? उन्होंने विस्तार से सारी योजना बताई मैंने हां कर दी। तब उन्होंने मुझसे पूछा कि आपको इस का रिवार्ड पता है? मेरा उत्तर था – हाँ, मौत। मैंने कभी ठाकुर जी की आंखों में आंसू नहीं देखे थे। वह भावुक हो उठे थे और उनकी आंखों से आंसू छलक आए। अपनी आंखें पोंछते हुए, उन्होंने कहा, ''इससे ज्यादा हम दे भी नहीं सकते हैं।''

यह भावनापूर्ण क्षण मुझे आज भी ताजा है। उसके बाद उन्होंने मुझे माननीय भाउराव देवरस जी से मिलाया और बाद में श्री विश्वनाथ जी और ठाकुर जी ने मेरे साथ विस्तार से बात की तथा पंजाब में राष्ट्रीय सुरक्षा समिति के संयोजक के नाते जिम्मेवारी दे दी गई।

राष्ट्रीय सुरक्षा समिति का कार्य करने के लिए मैं प्रदेश भर में कार्यकर्त्ताओं से मिल रहा था। माननीय ठाकुर राम सिंह जी अमृतसर आए हुए थे। डॉक्टर बलदेव चावला जी ठाकुर जी से मिलने के लिए वहां आए। ठाकुर जी ने मुस्कराते हुए डॉक्टर चावला को कहा कि डॉक्टर साहिब जय कृष्ण जी क्या कह रहे हैं? इनको समिति के कार्य के लिए प्रदेश का अध्यक्ष चाहिए। डॉक्टर बलदेव चावला ने कहा कि ठाकुर जी क्या करें जिस से भी बात करते हैं वह कहता है कि गोली कौन खाएगा? ठाकुर जी ने तुरन्त कहा, ''पहली गोली आप खाओ न।'' डॉ. चावला ने कहा यह आदेश है या सुझाव है। ठाकुर जी ने तुरन्त कहा ''आदेश ही समझ लो।'' ठाकुर जी की वाणी में जो आत्म-विश्वास और अपनापन था वह राष्ट्रभक्ति के भाव से परिपूर्ण था। वह मुझे आज भी स्मरण है कि डाक्टर बलदेव चावला राष्ट्रीय सुरक्षा समिति के प्रदेश अध्यक्ष बनने को तैयार हो गए। उसके बाद पंजाब में हिन्दू-सिक्ख भाईचारे का निर्माण करने व पंजाब के लोगों में आत्म विश्वास पैदा करने के लिए जो आन्दोलन चला वह इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण पन्ना बन गया। ठाकुर जी का मार्गदर्शन व प्रेरणा से एक बहुत प्रभावी आन्दोलन खड़ा हो सका।

महासचिव
ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध
संस्थान नेरी, हमीरपुर (हि.प्र.)

गतिविधियां

प्यार चन्द परमार

अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना समिति की दो दिवसीय द्वितीय उत्तर क्षेत्रीय कार्यशाला का आयोजन कलियुगाब्द ५१२१, विक्रमी संवत् २०७६ (२१-२२ सितम्बर, २०१९) को ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी, हमीरपुर (हि.प्र.) में हुआ। इसमें उत्तर क्षेत्र (हिमाचल प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, जम्मू कश्मीर तथा दिल्ली) के ७० पदाधिकारी सम्मिलित हुए। कार्यक्रम की अध्यक्षता अखिल भारतीय इतिहास संकलन समिति के राष्ट्रीय संगठन सचिव डॉ. बालमुकुन्द पाण्डेय ने की। कार्यक्रम में श्री सुरेन्द्र हंस, डॉ. रत्नेष त्रिपाठी, डॉ. ओम उपाध्याय, डॉ. प्रशान्त गौरव एवं श्री चेतराम गर्ग की विशिष्ट उपस्थिति रही। सर्वप्रथम अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के राष्ट्रीय अध्यक्ष स्वर्गीय प्रो. सतीश मित्तल जी को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की गई तथा प्रत्येक प्रान्त से एक-एक कार्यकर्त्ता ने प्रो. मित्तल जी के साथ अपने सम्बन्धों के आधार पर उनके जीवन पर प्रकाश डाला। डॉ. बालमुकुन्द पाण्डेय जी ने प्रो. सतीश मित्तल जी के सम्बन्ध में अपने संस्मरण प्रस्तुत किए।

बौद्धिक सत्र में अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के सचिव श्री सुरेन्द्र हंस ने गुरु नानक देव जी, उत्तर क्षेत्र के संगठन सचिव डॉ. प्रशान्त गौरव ने जलियांवाला बाग एक नरसंहार तथा भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् (आई.सी.एच.आर.) के निदेशक डॉ. ओम उपाध्याय ने महात्मा गांधी के जीवन-चरित एवं उनसे संबन्धित घटनाओं पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला। उन्होंने आई. सी.एच.आर. की कार्यपद्धति, शोध-ग्रांट, संगोष्ठी ग्रांट, यात्रा-ग्रांट के स्वरूप तथा आवेदन करने के ढंग तथा आई.सी.एच.आर. एक इतिहासविद् को कैसे सहयोग कर सकता है, उसकी विस्तृत जानकारी दी।

कार्यक्रम में उपस्थित मंचासीन अधिकारी

उद्घाटन सत्र में सोलन के शिवसिंह चौहान द्वारा लिखित ''कतरन में परिवर्तित होती नारी'' एवं बिलासपुर इतिहास संकलन समिति की तरफ से लिखी

गई ''बिलासपुर के वीर सैनिक'' पुस्तकों का विमोचन किया गया।

संगठनात्मक सत्र में प्रान्त के अध्यक्ष एवं सचिव के द्वारा संगठनात्मक वृत्त वाचन किया गया। पूर्व में हुए कार्यक्रमों की समीक्षा, इतिहास दर्पण की सदस्यता की समीक्षा, जिला स्तर पर संगठन एवं कार्यकारिणी के विकास की चर्चा, त्रैमासिक एवं मासिक बैठकों की समीक्षा, प्रान्त एवं जिलों के सदस्यों के लेखन कार्यों की समीक्षा की गई। प्रान्तों की बैठकों एवं कार्यक्रमों के लिए राष्ट्रीय अधिकारियों के प्रवास एवं जिले की बैठकों एवं कार्यक्रमों के लिए प्रान्तीय अधिकारियों के प्रवास को तय किया गया।

माननीय प्रो. सतीशचन्द्र मित्तल जी की याद में एक पुस्तक प्रकाशित करने के निर्णय लिया गया। जिसमें सभी प्रान्तों से विद्वज्जन मित्तल जी से सम्बन्धित अपने लेख देगें। ३० नवम्बर २०१९ को हस्तिनापुर (मेरठ) में साधारण सभा का आयोजन किया जाएगा। इसमें उपस्थित रहने वाले सदस्यों की सूची एवं वृत्त प्रस्ताव प्रस्तुत करने का निर्णय लिया गया।

ठाकुर रामसिंह पुण्य तिथि

कलियुगाब्द ५१२१, विक्रमी संवत् २०७६ (६ सितम्बर, २०१९) को इतिहास पुरुष ठाकुर रामसिंह जी की पुण्य तिथि के अवसर पर संस्थान में हवन-यज्ञ आयोजित कर ठाकुर जी के कृतित्त्व का स्मरण करके उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पित की गई। ठाकुर जी को स्मरण करते हुए श्री मजलसी राम वैरागी ने उनके जीवन और कार्य रेखाकिंत करते हुए स्वस्वर कविता पाठ किया। इस अवसर पर श्री चेतराम गर्ग, प्रेम सिंह भरमौरिया, प्यार चन्द परमार, डॉ. रमेश शर्मा, डॉ. सोमदेव शर्मा, डॉ. विकास शर्मा, रमेश रांगड़ा, डॉ. मोती राम शर्मा आदि विद्वानों ने भाग लिया।

ठाकुर जी की पुण्य तिथि हवन आयोजन

संस्थान की मासिक गोष्ठी

ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी, हमीरपुर (हि.प्र.) श्रीमद्भागवत अनुशीलन विषय पर अपनी नियमित मासिक गोष्ठी प्रत्येक माह के प्रथम रविवार को आयोजित करता है। जिसमें डॉ. ओम दत सरोच, सेवानिवृत प्राचार्य, संस्कृत महाविद्यालय चकमोह, जिला हमीरपुर श्रीमद्भागवत पुराण के ऐतिहासिक पक्ष के मुख्य वाचक के रूप में उपस्थित रहते हैं। ४ अगस्त, २०१९ की एक मासिक गोष्ठी में २५ तथा १ सितम्बर २०१९ की गोष्ठी में ३१ विद्वान उपस्थित रहे। १

सितम्बर २०१९ की संगोष्ठी में वाचक डॉ. ओम दत सरोच ने श्रीमद्भागवत पुराण के द्वितीय स्कन्द के दूसरे अध्याय पर प्रवचन करते हुए कहा कि शुकदेव मुनि जी ने परीक्षित को श्रीमद्भागवत पुराण सुनाते हुए योगी के शरीर को छोड़ने की विधि व मोक्ष प्राप्ति का उपाय विस्तार से बताया। योगी अन्तिम समय में देह त्याग के अवसर पर परमेश्वर में ध्यान लगा कर प्राणवायु को शरीर के विभिन्न चक्रों से ले जाते हुए ब्रह्मरन्ध्र से बाहर निकालता है तथा सूक्ष्म शरीर से योगी विभिन्न लोकों में विचरण करता है। उन्होंने बताया कि भगवत भक्ति ही मोक्ष का साधन है।

मासिक गोष्ठी में विद्वत-जन

निदेशक मण्डल बैठक

कलियुगाब्द ५१२१, विक्रमी २०७६ (१३-१४ जुलाई २०१९) को ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी के निदेशक मण्डल की बैठक निदेशक मण्डल के अध्यक्ष श्री विजय मोहन कुमार पुरी जी की अध्यक्षता में संस्थान के सभागार में सम्पन्न हुई। बैठक में संस्थान द्वारा किए जा रहे कार्यों की समीक्षा एवं भविष्य योजना पर विस्तारपूर्वक चर्चा हुई। बैठक में संस्थान के कार्यों को गति प्रदान करने हेतु महत्त्वपूर्ण निर्णय भी लिए गए जिनमें २३-२४ नवम्बर २०१९ को ''पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में ऋषि परम्परा'' विषय पर राष्ट्रीय परिसंवाद, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय के सहयोग से महात्मा गांधी की १५० वीं वर्षगांठ पर परिसंवाद, जलियांवाला बाग नरसंहार के १०० वर्ष पूरे होने पर हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय एवं भाषा कला संस्कृति अकादमी के संयुक्त तत्त्वावधान में हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय में संगोष्ठी तथा महाविद्यालय स्तर पर जिला किन्नौर, चम्बा व कुल्लू में संगोष्ठियों के आयोजन की रूपरेखा शामिल है।

दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला में **''जलियांवाला बाग नरसंहार का पुनरावलोकन : भारतीय इतिहास में एक धब्बा''** विषय पर दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी कलियुगाब्द ५१२१, विक्रमी संवत् २०७६ (२४-२५ सितम्बर, २०१९) को विधि विभाग के सभागार में इतिहास विभाग, अन्तर्राष्ट्रीय दूरवर्ती शिक्षा एवं मुक्त अध्ययन केन्द्र (इक्डोल) हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय व ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी, जिला हमीरपुर के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित किया गया। कार्यक्रम के मुख्यातिथि प्रो. हरमोहिन्द्र सिंह बेदी, कुलाधिपति, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय रहे तथा कार्यक्रम अध्यक्षता प्रो. सिकन्दर कुमार, कुलपति, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय ने की। श्री चेतराम गर्ग, समन्वयक एवं निदेशक, शोध संस्थान नेरी व प्रो. कुलवन्त

सिंह पठानिया, निदेशक, इक्डोल विशिष्ट अथिति के रूप में मौजूद रहे। संगोष्ठी में बीज वक्तव्य डॉ. अंजू सूरी, अध्यक्ष, इतिहास विभाग पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ द्वारा किया गया। संगोष्ठी में मंच का परिचय व औपचारिक स्वागत डॉ. अंकुश भारद्वाज, संगोष्ठी संयोजक तथा डॉ. बी. आर. ठाकुर, आयोजन सचिव व डॉ. नन्द लाल ने किया। संगोष्ठी से सम्बन्धित अपने बीज वक्तव्य में डॉ. अंजू सूरी ने जनरल डायर द्वारा किए इस नरसंहार को साम्राज्यवादी शक्ति की सोची समझी चाल बताया। इस मौके पर मुख्यातिथि प्रो. एच.एस.बेदी ने कहा कि उस समय पंजाब में भ्रातृभाव पूरे यौवन पर था। सभी मिल-जुल कर अंग्रेजों को देश के बाहर निकालना चाहते थे। वे भारतीयों की एकता से भयभीत हो गए थे अतः उन्होंने स्वतन्त्रता संग्राम की ज्वाला को शान्त करने के लिए लोगों में भग्न फैलाकर इस नरसंहार को अंजाम दिया। परन्तु इस घटना ने स्वतन्त्रता संग्राम को एक नया मोड़ दिया। यह भारतीय इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। इस घटना ने सम्पूर्ण भारत को झकझोर दिया। कार्यक्रम के अध्यक्ष प्रो. सिकन्दर कुमार ने कहा कि जंलियावाला बाग नरसंहार में शहीदों के बलिदान को कभी नहीं भुलाया जा सकता। यह नरसंहार अंग्रेजों के मन में व्याप्त भय को दर्शाता है कि वे भारतीयों से कितने भयभीत थे। इस अवसर पर श्री चेतराम गर्ग ने शोध संस्थान नेरी के उद्देश्यों व विभिन्न गतिविधियों की जानकारी देते हुए बताया कि शोध संस्थान में नियमित रूप से वर्षभर विभिन्न गतिविधियों का आयोजन किया जाता है। उन्होंने यह भी कहा कि शोध संस्थान में इतिहास से सम्बन्धित कार्यशालाओं, संगोष्ठियों व विचार गोष्ठियों के अतिरिक्त शोधार्थियों को शोध के लिए उचित वातावरण प्रदान किया जाता है। देशभर के शोधार्थी संस्थान में शोध हेतु आते हैं। इस मौके पर प्रो. कुलदीप चन्द पठानिया ने भी अपने विचार रखे। उद्घाटन सत्र में डॉ. भंवरा कुमारी द्वारा लिखी पुस्तक ''Effects of Yogic practices in test anxiety, stress and emotional maturity'' का विमोचन किया गया।

हि.प्र.विश्वविद्यालय में आयोजित संगोष्ठी में विद्वान

'शिक्षा और चर्चा' सत्र की अध्यक्षता प्रो. एम.पी. सिंह, राष्ट्रीय अध्येता भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान शिमला द्वारा की गई। पैनल में वक्ता के रूप में प्रो. राजवीर शर्मा, राष्ट्रीय अध्येता भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान शिमला, डॉ. प्रशान्त गौरव, सह आचार्य स्नातकोत्तर राजकीय महाविद्यालय चण्डीगढ़ व प्रो. मोहम्मद इदरीस, अध्यक्ष इतिहास विभाग पंजाबी विश्वविद्यालय

पटियाला रहे। इस सत्र में जंलियावाला बाग नरसंहार पर विस्तार से चर्चा की गई। सभागार में उपस्थित विद्वानों व शोधार्थियों की जिज्ञासाओं का समाधान पैनल के विद्वानों द्वारा किया गया। इसके उपरान्त दो तकनीकी सत्र समानान्तर रूप में अन्तर्राष्ट्रीय दूरवर्ती शिक्षा एवं अध्ययन केन्द्र शिमला के भवन के तृतीय तल पर दो अलग-अलग संगोष्ठी कक्षों में आयोजित किए गए।

पहले तकनीकी सत्र की अध्यक्षता प्रो. वी.के. शिवराम, अध्यक्ष इतिहास विभाग हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला ने की। प्रो. जोगेन्द्र सकलानी, सहायक आचार्य राजनीति शास्त्र हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय सह-सत्राध्यक्ष रहे। इस सत्र में कुल आठ शोध पत्र प्रस्तुत किए गए जिन पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई। दूसरे तकनीकी सत्र की अध्यक्षता डॉ. प्रियतोष शर्मा, सह-आचार्य इतिहास विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ ने की। प्रो. हरि सिंह, शिक्षा विभाग हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय सह-सत्राध्यक्ष रहे। इस सत्र में १० शोध पत्र प्रस्तुत किए गए। चायपान के उपरान्त समापन सत्र का आयोजन कुलपति कार्यालय के सभागार में किया गया। समापन पत्र में डॉ. प्रशान्त गौरव मुख्यातिथि रहे। कार्यक्रम की अध्यक्षता प्रो. कुलदीप सिंह पठानिया ने की। इसमें केवल शर्मा, सह-सचिव मुख्यमन्त्री हिमाचल प्रदेश विशेष अतिथि व श्री किस्मत कुमार, प्रान्त कार्यवाह विशेष आमन्त्रित सदस्य के रूप में उपस्थित रहे। इस सत्र में मुख्य वक्ता श्री चेतराम गर्ग रहे। इस मौके पर बतौर मुख्यवक्ता चेतराम गर्ग ने कहा कि किसी भी राष्ट्र के विकास में इतिहास की अहम भूमिका रहती है। औपनिवेशिक काल में तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर देश के विकृत इतिहास को हमारे सामने प्रस्तुत किया गया। दुर्भाग्य से हम आज भी उसी इतिहास को पढ़ते व पढ़ाते आ रहे हैं। हमें अपने गौरवमयी इतिहास के तथ्यों के आधार पर विश्लेषण करने की आवश्यकता है। तभी हम समाज के सम्मुख सही इतिहास प्रस्तुत कर सकते हैं। जंलियावाला बाग की घटना को हम एक नरसंहार के रूप में तो याद करते हैं परन्तु उसके शहीदों के बलिदान के बारे में क्या जानते हैं। उनके प्रति क्या भाव हमारे मन में हैं? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। जिसका उत्तर हमें स्वयं ढूंढना होगा।

इस अवसर पर किस्मत कुमार ने कहा कि आज समाज के सम्मुख भारत में गौरवमयी इतिहास को प्रस्तुत करने की आवश्यकता है कि हमने कितने संघर्षों के उपरान्त आजादी को प्राप्त किया है, यह नई पीढ़ी को बताने आवश्यकता है ताकि वे राष्ट्र के निर्माण में अपनी भूमिका को सुनिश्चित कर सकें। संगोष्ठी में ठाकुर जगदेव चन्द स्मृति शोध संस्थान नेरी के वैचारिक पक्ष निदेशक डॉ. ओम प्रकाश शर्मा, इतिहास दिवाकर के सम्पादक डॉ. राकेश कुमार शर्मा, प्रवीण भट्टी, लक्की शर्मा सहित कई विद्वान व शोधार्थी मौजूद रहे।

संगोष्ठी के दूसरे दिन 'पुरातत्त्व पर प्रशिक्षण व स्किल डिवैलवमैंट' सत्र का आयोजन किया गया। इसमें विशेष रूप से डॉ. विवेक डांगी व सुश्री श्रेया गौतम का मार्गदर्शन शोधार्थियों को प्राप्त हुआ। इस सत्र में पुरातत्त्व की तकनीक व संभावनाओं पर विशेष बल दिया गया। जिसमें ५० शोधार्थी उपस्थित रहे।

गांव व डाकघर - नेरी,
तह. व जिला हमीरपुर (हि.प्र.)